प्रकृति के अनन्य भक्त

स्वर्गीय डॉक्टर

श्री किशनलाल जी अग्रवाल

★

संक्षिप्त जीवन परिचय

एवं

श्रद्धांजलि ग्रन्थ

★

संपादक

रामेश्वर अग्रवाल

प्र का श क

प्राकृतिक चिकित्सालय, बापूनगर

जयपुर (राजस्थान)

जनवरी सन् १९६५]   [मूल्य १) रु०

दो शब्द

सन् १६४६ के लगभग मेरी पत्नी के इलाज के सिलसिले में मेरा श्रद्धेय डॉ० श्री किशनलालजी से परिचय हुआ। उन्हें पायरिया, प्रदर, जुकाम आदि की पुरानी व लंबी बीमारी थी और उनका इलाज उनके भाई स्व. श्री बीजराज जी के सद्प्रयत्न से डॉ० साहब द्वारा, श्रमजीवी संघ, श्रीमाधोपुर में पं० श्री बंशीधरजी शर्मा के मार्गदर्शन में हुआ था। तभी से हमारे परिवार में प्राकृतिक चिकित्सा का प्रवेश हुआ। श्रीमाधोपुर से उन्हें खादीबाग (जयपुर) भी बुलाया और वहां कई दिनों तक दृढ़ निष्ठा, विश्वास एवं लगन से उनके उपचार संबन्धी प्रयोग देकर काफी आकर्षण हुआ। प्राकृतिक चिकित्सा से मेरा सम्बन्ध तो पू० श्री महावीर प्रसाद जी पोद्दार द्वारा सन् १६३१ से ही था और तभी से कई प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी बन्धुओं से संपर्क आया। परन्तु डॉ० श्री किशनलाल जी की निष्ठा तो अद्भुत ही थी।

सन् १६५० की बात है-श्री सोहनलालजी दूगड को साईटिका–पेन था। उनके आग्रह से मैंने उन्हें जयपुर बुलाया। अनेक विघ्न-बाधाओं के बावजूद डॉ० साहब ने उनके लंबे दर्द को एक सप्ताह में आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाया। उसी रसे श्री दूगड़ जी के आग्रह से प्राकृतिक चिकित्सालय की शुरुआत हुई। अल्प साधनों से दृढ़ता के साथ डॉ० साहब प्राकृतिक चिकित्सा का प्रचार, प्रयोग और सेवा करते रहे। सालाना ५–६ हजार का बजट बना कर उतना सा ही काम वहां होता रहा। इसी बीच श्रद्धेय श्री कृष्णदास जी जाजू का जयपुर में आगमन हुआ और उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सालय का निरीक्षण किया। निरीक्षण के समय मैं उनके साथ वहीं था। संस्था संचालन, संचालकों के कर्तव्य, दायित्व और आत्म-निरीक्षण की उनकी अद्भुत कसौटी थी। निरीक्षण के बाद हम सब लोग शिवदासपुरा के खादी ग्रामोद्योग विद्यालय के आरम्भ करने के संबंध में उनके साथ वहां गए थे जहां उन्हों ने मुझे अपने पास बैठा कर कहा, 'आपको योग्य, निष्ठावान् और अच्छे वैद्य जी मिल गए हैं। आपका चिकित्सालय मैं अच्छी तरह देख आया हूं। आपको इस काम के लिए समय कम मिलता होगा। फिर भी इस

में थोड़ा अधिक समय देना चाहिए-आदि। उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सालय अपना पूरा आशीर्वाद दिया और अधिक सक्रियता से उस काम को करने प्रेरणा दी।

मैंने वहीं पर डॉ० श्री किशनलाल जी व श्री शंभूप्रसाद जी से बातची करके जो सालाना ६—७ हजार का बजट था उसे संभवत: ३७ या ४७ हजा रुपयों का बनाया और उसके लिए पूरा प्रयत्न करने का निश्चय किया क्यों प्रयोगात्मक और अस्थायी ढंग से जो चिकित्सालय चलाने का चल रहा थ उसको श्रद्धेय श्री जाजूजी जैसे व्यक्तियों का आशीर्वाद मिलने से ठीक प्रका चलाने का उत्साह हुआ। डॉ० श्री किशनलाल जी उसमें पूरे उत्साह एवं लग से जुट पड़े। उसके बाद उनके कई चमत्कार देखने का अवसर मिला। टी० बी० तथा कई भयंकर बीमारियों के उपचार भी उनके द्वारा वहां हुए। उन सब क विवरण संक्षेप में इस पुस्तक में आ गया है। मैं तो इतना ही लिखना चाहता ह कि हमारे परिवार पर उनके अनन्त उपकार हैं, उनको हम कभी भी भुला नहीं सकते। ईश्वर से यही प्रार्थना है कि उनकी दृढ़ता, निष्ठा और लगन हम स को रहे जिससे हम अपने निर्दिष्ट पथ पर दृढ़ता से आगे बढ़ सकें।

डॉक्टर साहब के सम्बन्ध में कुछ मित्रों के लेख प्राप्त होने पर श्रद्धांज स्वरूप पुस्तिका प्रकाशित करने का विचार हुआ। प्राकृतिक चिकित्सालय और से उसकी सभा में प्रस्ताव पारित करके यह काम मुझे सौंपा गया। मित्रों के लेख भी आ गए थे। इसी बीच भाई श्री शांतिस्वरूप जी गुप्ता स्वेच्छा से इस कार्य को उठा लिया। वे डाक्टर साहब के प्रेमी भक्तों में से हैं उन्हें श्री राजेश्वर नारायण जी सिन्हा से पूरा सहयोग मिला। डॉक्टर साह के सुपुत्र श्री चुन्नीलाल जी व लालचंद जी ने भी तुरंत पुस्तक के लिए पूरी व्यवस्था करदी। अन्य मित्रों ने भी डाक्टर साहब के लिए लेख और श्रद्धांजलि भेजने की कृपा की उसीके फलस्वरूप यह पुस्तक प्राकृतिक चिकित्सा के प्रेमी बंधुओं के हाथों में सादर समर्पित है।

विनीत

रामेश्वर अ...

१९ जनवरी १९६५ (माघ कृष्णा २)
बी० १८९ ए० बापूनगर,
जयपुर (राजस्थान)

विषय सूची

तृतीय खण्ड—परिवार वालों की ओर से

चतुर्थ खंड—बाबाजी एवं प्राकृतिक जीवन पद्धति

प्रथम खंड

संक्षिप्त जीवन परिचय

. श्री भगवानदासजी केला की 'प्राकृतिक चिकित्सा ही क्यों?' पुस्तक से साभार

प्रकृति के अनन्य भक्त
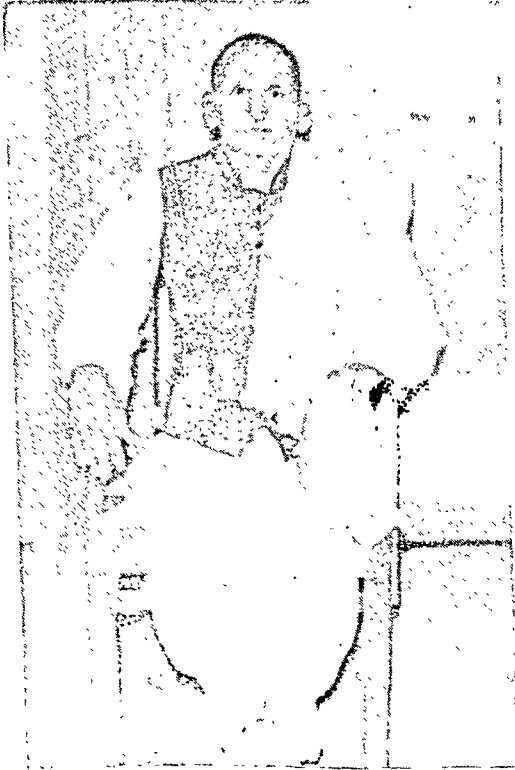
स्व० डॉ० श्री किशनलालजी अग्रवाल
(सन् १८८६—१९६४)

प्रारम्भिक

सत्य कल्पना से भी अधिक आश्चर्यजनक—इस सृष्टि में एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक वस्तु है, और एक से एक बढ़कर आश्चर्यजनक घटनाएँ होती रहती हैं। अनेक बार सत्य कहानी से भी अधिक अचम्भे का होता है। अस्तु, हम यहाँ श्री किशनलाल अग्रवाल के जीवन का कुछ परिचय देकर यह बताएँगे कि किस प्रकार ये रोगी ही नहीं, महारोगी की अवस्था को पहुंचे, और फिर पीछे किस प्रकार निराशा की चरम सीमा को पहुंचकर इनके जीवन में नया मोड़ आया जो इनके लिए तो सुखकारी हुआ है, सैकड़ों दूसरे आदमियों के लिए भी हितकारी हुआ और हो रहा है।

जीवन परिचय व शिक्षा—इनका जन्म श्रीमाधोपुर (जयपुर) में भादो बदी २, सम्वत् १९४६ को हुआ।❀ इनके पिता श्री बालूराम जी थे, ये रींगस के धनाढ्य सेठ नाथारामजी के यहाँ गोद गये थे। श्री बालूरामजी का लालन-पालन बड़े लाड़चाव से हुआ। क्रमशः खर्च बढ़ता रहा और कमाई कम होती गयी, इससे उन पर बहुत कर्ज हो गया। इस पर वे परिवार सहित एलिचपुर (मध्यप्रदेश) चले गये। कुछ समय

❀ यह तिथि अनुमान से लिखी गयी है, बदी या सुदी निश्चित रूप से मालूम नहीं।

बाद वे तो श्रीमाधोपुर वापिस आ गये परन्तु किशनलालजी को व
ही छोड़ आये। कारण वहाँ ये श्री नारायणदास अग्रवाल के सम्प
में आ गये थे, जो इन्हें अपने बालक की तरह प्यार करते थे। उन्हों
इनको कुशाग्र बुद्धि तथा होनहार समझ कर इन्हें पढ़ाने में बहुत उत्सा
दिखाया और यथेष्ट सहायता की। इस प्रकार किशनलालजी ने एलि
चपुर में उर्दू लेकर (जिसका कुछ अभ्यास ये श्रीमाधोपुर में कर चु
थे) पढ़ना शुरू कर दिया। उस समय ये तेरह साल के थे। स्कूल
हैडमास्टर श्री खैरखॉह बहुत सज्जन थे। उन्होंने इनकी पढ़ाई अच्
देखकर इन्हें चार रुपये मासिक छात्रवृत्ति दिला दी, जिससे इन्हें उ
समय बहुत सहारा मिला। एलिचपुर में दो साल रह कर इन्होंने छ
क्लास पास कर लिया। पीछे ये अमरावती में सातवें क्लास में दाखि
हो गये। पर कुछ समय बाद घर की आर्थिक स्थिति के कारण इ
पढ़ाई छोड़कर आजीविका कमाने में लगना पड़ा। इस समय ये सोल
वर्ष के हो गये थे।

कारोबार, धन प्राप्ति और गार्हस्थ जीवन—रोजगार
तलाश में किशनलाल जी छावनी मरदान (पेशावर) गये, जहाँ इन
बहनोई श्री बिरधीचन्द रहते थे। उन्होंने तथा उनके पिताजी ने
साल इनका काम देख कर मार्च १९०९ में इन्हें एक अलग दुक
नौशेरा छावनी में खुलवा दी। इस बीच में इनका विवाह हो गया थ
दुकान में आढ़त का और थोक परचून आटे का काम होता था। धी
धीरें इससे अच्छी आमदनी होने लगी, तथापि कर्जदार होने के का
इनके पिताजी बहुत चिन्तित रहते थे। रुपया पास न होने के का
उन्होंने किशनलाल जी की शादी भी (श्रीमाधोपुर का) मकान

व कर की थी। यह मकान पीछे ऋणदाता को दो हजार रुपये में बेच
इया गया था। परन्तु शादी के आठ साल बाद ऋणदाता को यह
कम देने पर इन्हें मकान वापिस मिल गया। हाँ, मकान मिलने से दो-
ीन साल पहले इनके पिताजी का देहान्त हो गया था। अस्तु, किशन-
ालजी का रोजगार अच्छा चलने लगा, और इन्होंने अपने पिता के
मय का ऐसा ऋण भी चुका दिया जिसे लिये बीस-पच्चीस वर्ष हो
ये थे। अब ये नौशेरा छावनी में अच्छे धनवानों में गिने जाने लगे।
नका कुटुम्ब भी बढ़ गया। इनको चौदह सन्तान हुईं, उनमें से तीन
ड़के और तीन लड़कियाँ इस समय मौजूद हैं। इनमें से दो लड़कियों
और दो लड़कों की शादी हो चुकी है।

रोगों की कहानी; श्वेत कुष्ठ—कहा है, 'पहला सुख, निरोगी काया'। अफसोस! इनके इतने धनवान होते हुए भी इनका जीवन सुखमय नहीं था। तेरह साल की उम्र में इनकी कमर पर श्वेत कुष्ठ (फुलबहरी) का एक दाग हुआ। ये उसके लिए औषधि ढूँढ़ने लगे। विज्ञापन देखकर इन्होंने बावची आदि की मिलावट की औषधि लगा ली, उससे सफेद दाग की जगह जख्म हो गये। बहुत कष्ट रहा। लगभग एक माह के बाद आराम हो पाया। अब दाग कुछ छोटा रह गया था, पर पीछे वह धीरे-धीरे बढ़ने लगा। फिर इन्होंने कई तरह की औषधियाँ लगायीं और खायीं। परन्तु लाभ न हुआ और रोग बढ़ता ही गया।

जुकाम का इलाज किया, दमा हो गया; घोर कष्ट—सोलह साल की उम्र में ये श्रीमाधोपुर से मरदान गये। वहाँ इन्हें एक दिन

जोर का जुकाम हुआ। इस पर एक महाशय के कहने से इन्होंने (बिना दूध की) चाय पी। उसी रात को इन्हें जोर से दमा हो गया। बहुत तकलीफ हुई। तीन-चार दिन बीत गये। आखिर, एक सिक्ख दुकानदार ने आकड़े (आख) के दूध में फूंकी हुई दवाई दी। उससे इन्हें लगभग पन्द्रह दिन में आराम हुआ। पर कुछ समय बाद फिर दमा हो गया। इन्होंने पहले वाली दवाई ली, पर इस बार उससे आराम नहीं हुआ। तब इन्होंने एक विलायती दवाई का धुआँ लिया। उससे कुछ दिन आराम रहा, पर पीछे दमा और भी जोर से होने लगा। यहाँ तक कि सर्दी में इन्हें सारी-सारी रात जागना पड़ता था। आखिर तंग आकर ये श्रीमाधोपुर आ गये, यहाँ कुछ आराम रहा। परन्तु पीछे नौशेरा जाने पर फिर दमा उसी तरह होने लगा। बीस साल की उम्र तक जगह-जगह दवाई की। बाद में ये अपनी ससुराल भगवतगढ़ आये और वहाँ एक प्रसिद्ध वैद्य से तीन माह तक इलाज कराया। लगभग तीन सौ रुपये खर्च हुए। औषधियों में अडूसा, कनीर, मूंगा भस्म, अभ्रक, हरताल आदि शामिल थी। इससे केवल एक माह, वह भी जब तक ये इधर रहे, कुछ आराम रहा। नौशेरा जाने पर रोग का जोर पहले से भी ज्यादा हो गया। ये जगह-जगह से नयी-नयी दवाई मंगा कर लेते रहे, पर रोग बढ़ता ही रहा।

खुजली भी हो गयी—जब ये पच्चीस साल के थे, तो इन्हें खुजली भी हो गयी। कुछ दिन बाद वह मिट गयी। इस समय इन्होंने काशी से दमे की दवाई मंगा कर खाई, उसमें लगभग तीन सौ रुपये लगे। उससे डेढ़-दो साल फायदा रहा, लेकिन पीछे खुजली इतने जोर

ी हुई कि सारा शरीर गलने लगा। दमे और खुजली दोनों से ग्रस्त
ो ये दो माह तक खाट में पड़े रहे। बकायन की अंडोली खाने से
खुजली में कुछ आराम हुआ तो दमे ने और जोर पकड़ लिया।

नशा करके समय काटने लगे—कष्ट की सीमा न रही। ये
ात-दिन धतूरा पीकर, अमल (अफीम) खाकर, नशा करके समय काटने
ागे। जब जागते तो कष्ट की बेचैनी को मिटाने के लिए ये कोई न
ोई नशा करके सो जाते। पीछे फिर जब-जब जागते तो नशा लेकर
ेहोश हो जाते। इस तरह ये सारा ही समय बेहोशी में रहने का
ायत्न करते।

रोगों की संख्या ४४, मृत्यु की प्रतीक्षा—इस समय इन्हें
ायी बीमारी बवासीर की और हो गयी, श्वेतकुष्ठ भी बढ़ता ही रहा।
स तरह ये कई बीमारियों से घिर गये। एक दिन पूछने पर डाक्टरों ने
ताया कि इनके रोगों की संख्या ४४ हो गयी है और अब बचना
ुश्किल है। बहुत परेशान होकर ये कलकत्ते गये और दो माह इधर-
धर फिर कर तथा बीमारी में लगभग दो हजार रुपये खर्च करके लौट
ाये। पेशावर की लेबोरेटरी (प्रयोगशाला) में इन्होंने अपने खून की
ाँच करायी, पर वहाँ से कोई समाधानकारक जवाब नहीं मिला। ये
हुत परेशान हो गए। ये पारे की गोली पानी में डालकर उसमें हाथ
खते तो कुछ चैन पड़ता। दिन में या रात में नींद नहीं आती थी।
ींद के वास्ते अखबार में विज्ञापन भी दिया, पर सब बेकार रहा।
भी कुछ नींद आ भी गयी तो पीछे और भी बुरी गति होती। खुजली
े इनका सारा शरीर गल गया था। हाथ, पैर, नाक, मुँह, होठ, सिर–

कोई जगह ऐसी न थी, जिस पर जख्म न हो। सीधा, टेढ़ा, दा
करवट या बायीं करवट किसी भी तरह लेटते नहीं बनता था। जख
पर मक्खियाँ बैठतीं, उनसे अलग ही तकलीफ होती। उससे बचने
लिए मच्छरदानी लगायी जाती, पर उससे गर्मी बेचैन करती। निदा
इनका यह जीवन कैसा दुखमय था! इन्हें जीना कठिन ही नहं
असम्भव प्रतीत होता था, पर मौत भी तो नहीं आ रही थी। क्य
करें, कुछ समझ में नहीं आता था।

सौभाग्यसूचक भेंट—ऐसी स्थिति में एक घटना हुई, जिसक
परिणाम पीछे बहुत ही कल्याणकारी रहा। सरदार ज्वालासिंह ज
इनके पास आये और इनसे कहा कि सन्तपुरे में एक साधु तीन दि
से भूखा है। वह मांसाहारी मनुष्य के यहाँ का भोजन नहीं करता। हाँ
वह यह कहता है कि यदि कोई मांसाहारी मनुष्य मांस खाना छो
देने की प्रतिज्ञा करे तो मैं उसके यहाँ का भी भोजन कर सकता हूँ
सरदार जी ने कहा हम मांस नहीं छोड़ सकते। इसलिए आप उन
भोजन करा दो तो अच्छा रहेगा। इस पर किशनलालजी उसके लि
भोजन बनवा कर भेजने लगे। ये उस साधु को आदरपूर्वक स्वामीज
कहा करते थे।

स्वामीजी गुजराती थे, पर हिन्दुस्तानी भी बोलते थे। वे पहले
दो सौ रुपये माहवार पाने वाले रेलवे एंजिनियर थे। उनका नाम
चन्द्रप्रभु ब्रह्मवेत्तानन्द सरस्वती था। उनकी उम्र पचास-पचपन साल
की मालूम होती थी। किशनलालजी का कथन है कि उन्होंने मन की
बड़ी साधना कर रखी थी और वे रोगियों का भविष्य कई-कई माह पूर्व
ठीक-ठीक बता देते थे।

बिना दवाई के इलाज; प्राकृतिक चिकित्सा—श्री किशनलाल स्वामीजी के लिए भोजन आदि की व्यवस्था करके जो सेवा-सत्कार किया था, उसके कारण स्वामीजी इनसे बहुत प्रसन्न हुए। जब उन्होंने उनकी घोर बीमारी और जीवन से निराशा की बात सुनी तो उन्होंने उनको बहुत सान्त्वना दी और कहा कि मैंने अपने वानप्रस्थ में सुना है कि बिना दवा के भी आदमी अच्छा हो जाता है। श्री किशनलाल को इस पर विश्वास नहीं हुआ, पर स्वामीजी बराबर इन्हें यह बात समझाते रहे। आखिर किशनलालजी ने यह देखकर कि दवाइयों से भी तो आराम नहीं हो रहा है, ये स्वामीजी की बात को विचारणीय मानने लगे। पीछे जो बातचीत हुई उसके फलस्वरूप इन्होंने स्वामीजी❀ को पाँच सौ रुपये देकर मुरादाबाद में प्राकृतिक चिकित्सा सीखने के लिए भेज दिया। स्वामीजी ने वहाँ से एक माह बाद इनके पास पाँच छोटे-बड़े टब, लेम्प, भाफ-कोच, ड्राइ एयर बाथ के यंत्र, एनिमा आदि का सामान भेज दिये और इनका शेष रुपया लौटा दिया।

प्रथम प्रयोग—इसके बाद एक दिन किशनलालजी को रात के समय अचानक खुजली का दौरा बहुत ही जोर से हुआ। दवाई की गोलियाँ समाप्त होने का इन्हें ध्यान नहीं था, और उस समय दवाई

❀ मुरादाबाद के श्री किशन स्वरूप श्रोत्रिय उत्तर भारत में प्राकृतिक चिकित्सा के अग्रदूत कहे जा सकते हैं। इस विषय के दूसरे जानकार मास्टर रामचरणजी थे। ये पत्र व्यवहार द्वारा लोगों को प्राकृतिक चिकित्सा के उपचार बताते और मार्ग—दर्शन किया करते थे। इसके लिए ये कुछ शुल्क लिया करते थे। श्री किशनलालजी ने मास्टर रामचरणजी के परामर्श युक्त पत्रों से बडा लाभ उठाया है।

वाले डाक्टर की दुकान बन्द हो गई थी। इन्होंने सोचा कि अब मरना ही है, एक बार टब में पानी भरकर नहा तो लूँ। इन्हें स्नान की ठीक विधि मालूम न थी, तो भी टब से स्नान करने से इन्हें रात्रि को नींद आयी और खुजली कम रही। फिर तो इनके मन में आशा का संचार हुआ। अगले दिन इन्होंने दो-तीन बार स्नान किया। बहुत आराम मालूम हुआ। तीन दिन बाद ये और भी अच्छे हो गये, और होते गये।

प्राकृतिक चिकित्सा में विश्वास और इसका प्रचार— अब श्री किशनलालजी को विश्वास हो गया कि बिना दवाई के, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति से भी, इलाज होता है। इन्होंने तार देकर स्वामीजी को बुला लिया। आने पर उन्होंने कहा कि जल्दी आ जाने से पूरी पद्धति नहीं सीख सका। अस्तु, किशनलालजी ने इस चिकित्सा पद्धति की छानबीन शुरू कर दी और ये इस विषय का साहित्य मंगाने और उसका अध्ययन करने लगे। इस प्रकार इनका यह ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता गया।

प्राकृतिक चिकित्सा के प्रयोगों से श्री किशनलालजी को तो लाभ हुआ ही, धीरे-धीरे दूसरे आदमियों को भी इनके इस ज्ञान का पता लग गया और वे भी इससे लाभ उठाने लगे। आस-पास के मोहल्लों और बाजार से लेकर पेशावर तक के आदमी इनके पास आकर प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ उठाने लगे। ये भी अपना अधिकाधिक समय इस कार्य में लगाने लगे।

विशेष वक्तव्य, कारोबार करें या चिकित्सा—इससे कारोबार की ओर इनका ध्यान कम रह जाना स्वाभाविक ही था। इनके यहाँ बहुत से आदमी काम करते थे। इनकी गैर हाजरी में वे बेकार समय काटने लगे। कारोबार को अधिकाधिक धक्का लगता गया। यहाँ तक कि कुछ समय बाद इन्हें कई हजार रुपये का नुकसान नजर आने लगा। इन्हें बहुत चिन्ता हुई। अब उन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा की बात तक न करने का निश्चय किया। ये सारा ध्यान अपने कारोबार में लगाने लगे। इस पर घाटा दिन-दिन पूरा होकर और भी लाभ हो गया।

अब इन्होंने फिर चिकित्सा कार्य की ओर ध्यान देना शुरू किया। कई रोगियों को अच्छा किया। ये सोचने लगे कि मैं जो रोग रूपी मृत्यु के मुँह से निकला हूँ तो दूसरों को आरोग्य का संदेश सुनाने और रोग-मुक्त करने के लिए ही हूँ। इन्होंने प्रतिज्ञा की कि ठीक हो जाने पर कारोबार छोड़कर अपनी शेष आयु भर केवल चिकित्सा का ही कार्य करूँगा, और अपना निजी पच्चीस हजार रुपये लगा कर अपने जन्म स्थान श्री माधोपुर में निश्शुल्क सेवा करूँगा। देश का विभाजन होने और पाकिस्तान बनने से इनकी इस योजना पर भयङ्कर आघात हुआ। इनकी सारी सम्पत्ति वहाँ ही रह गयी, और ये अपने परिवार के साथ जैसे-तैसे यहाँ आ सके। ऐसी दशा में प्राकृतिक चिकित्सा के काम में अपनी निजी रकम लगा कर निश्शुल्क सेवा करने की बात ही न रही। तथापि इस कार्य में इनकी रुचि और लगन बनी रही। अब ये डाक्टर हैं, प्राकृतिक चिकित्सा करते हैं। इसका परिचय आगे मिलेगा।

[२]

स्वयं अपनी चिकित्सा

गिरा हुआ स्वास्थ्य—पहले बताया जा चुका है कि श्री किशनलाल जी अग्रवाल को फुलबहरी (स्वेत कुष्ठ) तो युवावस्था पहुंचते-पहुंचते ही हो गया था, और इसका इलाज करने में कई प्रकार की औषधियों का सेवन किये जाने से दमा हो गया, पीछे इन्हें बवासीर और खुजली आदि ने घेर लिया। ये नयी नयी दवा लेते गये, किसी किसी बार कोई बीमारी कुछ समय के लिए दबी पर पीछे फिर उभर आयी और पहले से भी अधिक उग्र रूप में; नयी-नयी बीमारियां भी होती रहीं। इस प्रकार जब बीमारी चरम सीमा को पहुंच गयी और जीना दूभर हो गया तो संयोग से इन्हें नयी दृष्टि मिली और ये प्राकृतिक चिकित्सा की ओर झुके। यहां हम संक्षेप में यह बतलाते हैं कि इन्होंने अपने मुख्य-मुख्य रोगों का इलाज किस प्रकार किया।

श्वेतकुष्ठ और धूप-स्नान—श्री किशनलाल जी को श्वेतकुष्ठ का रोग तेरह साल की उम्र से ही हो गया था। यहां तक कि इनके शरीर के लगभग तीन-चौथाई भाग पर सफेद दाग हो गये थे। इसके इलाज के बारे में बहुत छानबीन की गयी, पर कोई भी इलाज सफल होता नज़र नहीं आया। इनके अनुभव ने बतलाया कि प्राकृतिक चिकित्सा से ही लाभ हो सकता है। इस के लिए सारे शरीर का ठंडा-गरम स्नान लेना चाहिए, जिसकी विधि पहले बतायी जा चुकी है। इसके अतिरिक्त

प स्नान जितने समय और जितनी बार लिया जा सके, लेना चाहिये। प स्नान की विधि यह है—रोगी उघाड़े बदन धूप में ऐसी जगह बैठता ;, जहां हवा न आती हो। यदि हवा चली हो तो चारों तरफ आड़ रके धूप ली जाती है। पहले दिन धूप-स्नान का समय थोड़ा सा ी रखा जाता है, और पीछे इसे धीरे-धीरे बढ़ाया जाता है। जाड़े के दिनों में शुरू में काफी समय तक धूप में रहा जा सकता है। प्रातःकाल की किरणें सब से अधिक लाभदायक होती हैं। धूप-स्नान करते समय सिर को हमेशा धूप से बचाया जाना चाहिये। जब सारे शरीर को धूप में रखना हो तो पहले सिर, मुंह और गरदन अच्छी तरह धोकर एक गीले तौलिये से इन स्थानों को अच्छी तरह ढक लेना उचित है। जब तौलिया सूख जाय या गरम हो जाय तो उसे फिर भिगो लिया जाय, जिससे सिर बराबर ठंडा रहे। धूप लेते समय रोगी को ठंडा पानी पीते रहना चाहिए। धूप जब तक अच्छी लगे तभी तक धूप-स्नान लेना लाभदायक है। धूप-स्नान के बाद तुरन्त ही ठंडे पानी से स्नान करना चाहिए या छाया में बैठ जाना चाहिए। इस क्रम को कई बार करना अच्छा साबित हुआ है।

ऐसा जान पड़ता है कि श्वेत कुष्ठ रोग शरीर में सूर्य-तत्व कम होने से पैदा होता है। इसलिए इसमें सूर्य-स्नान लाभकारी है। भारत में वेद, पुराण तथा अन्य साहित्य में सूर्य नमस्कार की बड़ी महिमा बतायी गयी है। यहां अनेक आदमी प्रातःकाल सूर्य के भक्ति-भाव पूर्वक दर्शन करते हैं, स्नान करके सूर्य की वन्दना करते हैं, और गायत्री मंत्र का जाप करते हैं। पर इन सब क्रियाओं में उनकी दृष्टि धार्मिक ही होती है, वे इनके स्वास्थ्य सम्बन्धी प्रभाव का विचार नहीं करते।

आधुनिक विज्ञान सूर्य किरणों के मानव शरीर पर पहुंचने वाले प्रभाव की मुक्त कंठ से प्रशंसा करता है। यह निर्विवाद है कि धूप-स्नान से जुकाम, शारीरिक निर्बलता, दमा, क्षय, चर्म रोग, रक्त संचार की न्यूनता और मज्जातन्तु के विकार नष्ट हो जाते हैं और शरीर में नया जीवन और नयी शक्ति का उदय होता है। धूप से (आल्ट्रावायोलेट) किरणें मिलती हैं जिनमें 'डी' विटेमिन (पोषण तत्व) भरपूर होता है जो शारीरिक विकास और स्वास्थ्य साधना के लिए बहुत ही आवश्यक और उपयोगी होता है।

श्री किशनलाल जी को अब कुष्ठ रोग रुपये में एक आना मात्र रह गया है और अब यह स्वयं—प्राकृतिक जीवन पद्धति से—जा रहा है। इन्हें धूप-स्नान लेने आदि की बहुधा फुरसत नहीं मिलती। अनेक बार ये उपेक्षा भी कर जाते हैं। इस रोग के बहुत समय तक बने रहने के बाद वृद्धावस्था में, साठ वर्ष से अधिक आयु होने पर प्राकृतिक चिकित्सा की ओर आये हैं। इस रोग के रोगी जल्दी ही इधर ध्यान दें तो उन्हें बहुत जल्दी लाभ हो सकता है।

दमे का इलाज—दमे का दौरा होने पर श्री किशनलाल जी को जो उपचार बहुत लाभकारी सिद्ध हुआ है वह इस प्रकार है—दौरे के समय उपवास करना। पीछे हरी पत्ती के साग (बथुआ, चौलाई या पालक आदि) का 'सूप' लेना, अर्थात् साग को कूट कर पानी में औटाना और उसे छान कर मामूली गरम रहते पीना (जरूरत हो तो जायके के लिए उसमें नींबू का रस और नमक मिलाया जा सकता है), एनीमा लेना और ठंडे-गरम स्नान लेना। कुछ आराम होने पर रसदार फ

प्रनुसार फल खरबूजा, मतीरा (तरबूज) आदि लेना ठीक रहा है। बाद में आटे में पत्तीदार साग मिला कर उसकी रोटी खाना और अलग से भी हरी पत्ती का साग काफी खाना लाभकारी है। रोटी और साग की यह बात तो हमेशा ही अच्छी है। भोजन में गाय का घी काफी मात्रा में लिया जा सकता है।

खूनी बवासीर का इलाज, उपयोगी सूझ-बवासीर के इलाज की बात इन्होंने न तो किसी पुस्तक में देखी और न किसी ने इन्हें बतायी। यह तो इन्होंने स्वयं ही निकाल लिया। यह बात इस प्रकार हुई। नौशेरा छावनी में काबुल दरया के नाम से एक बड़ी नदी सिंध (अटक) में गिरती है। वहां दिसम्बर जनवरी के महीनों में जब कि खूब सर्दी पड़ती थी, इन्होंने प्रातः काल नंगे पैर और उघाड़े बदन सैर के लिए जाना शुरू किया। ये उधर ही टट्टी जाने लगे। शौच के लिए इन्हें वहां बहुत ही ठंडा पानी मिलता था। लाचारी थी। कोई दूसरा उपाय न था। पर इनको यह लाचारी इनके लिए बहुत हितकर सिद्ध हुई। वह अत्यन्त शीतल जल मस्सों को बहुत सुखदायी मालूम हुआ। इस पर ये उस जल से मस्सों को हर रोज ज्यादा ज्यादा देर तक धोने लगे। पानी बहुत ही ठंडा लगता था, पर इन्हों ने उसका क्रम जारी रखा। इससे मस्से धीरे-धीरे छोटे पड़ते गये, यहां तक कि सर्दी का मौसम खत्म होने तक इनके मस्से जाते रहे। इस प्रकार इन्हें अनायास एक बहुमूल्य अनुभव प्राप्त हो गया, जो अचूक साबित हुआ।

खुजली की चिकित्सा, कटि स्नान, ठंडा-गरम स्नान, और भाप देना—खुजली से ये बहुत ही परेशान रहते थे। शरीर में जगह-

जगह से पीला कडुआ पानी निकलता था। एक ही दिन में सफेद छो
छोटी फुन्सियां होकर उनसे पानी बहने लगता था। बुरा हाल थ
दिन रात चौबीस घन्टे किसी भी समय चैन नहीं था। इसके लिए
कटि स्नान लेने लगे। इसकी विधि यह होती है कि आदमी टब में इ
तरह बैठ जाता है कि पांव बाहर रहते हैं और पेड़ू तथा पीठ पानी
रहती है। पेड़ू को कपड़े से हल्के हाथ से परन्तु तेजी से रगड़
जाता है।

कटि स्नान से खुजली में आराम हुआ। फिर भी साल में एक
दो बार दौरा हो जाता था; हाँ, वह पहले जैसा जोर का नहीं होता
था। क्रमशः दौरा और भी हल्का होने लगा। उस समय इन्हें अन्य
उपचारों का ज्ञान न था, और कटि स्नान से जितना आराम मिले उसे
ही इन्होंने गनीमत समझा। पीछे इन्हें खुजली के उपाय मालूम होने
लगे। तब इन्होंने ठंडा-गरम स्नान लेना शुरू किया। इस स्नान के लिए
पानी कोरे घड़ों में रात भर खुली हवा में रखकर ठंडा किया जाता है
अथवा बरफ का पानी करके उसका उपयोग किया जाता है। जह
प्राकृतिक अर्थात् पहाड़ी बरफ न मिले तो (कारखानों में) तैयार की हुई
बरफ काम में लायी जाती है। कड़कड़ाती सर्दी में पीतल की कोठी में
ठंडा पानी भर लिया जाता है और उसमें रोगी को बैठाया जाता है।
शरीर में काफी थरथराहट आ जाने पर रोगी को एकदम गरम टब में
बैठाया जाता है। यह क्रिया बारी-बारी से एक समय में चार पांच बार
की जाती है जितनी सहन हो सके। इस स्नान की समाप्ति ठंडे पानी
से की जाती है।

इस स्नान से श्री किशनलालजी को आश्चर्यजनक लाभ हुआ। इन्हें ा मालूम होने लगा कि वर्षों का काम महीनों में—बल्कि यों कहिए हफ्तों में—हो रहा है। ठंडे-गरम स्नान के अलावा एक बात और की जाती थी। खुजली की जगह जहाँ पानी नहीं बहता था, सूजन जाती थी। वहाँ भाप दी जाती थी, फिर उस जगह को ठंडे पानी धो दिया जाता था। यह क्रिया एक समय में चार पांच बार की ाती थी। पीछे भाप वाली जगह को कुछ देर कपड़े से ढक लिया जाता ा। इस क्रिया से रोम-कूप खूब खुल जाते हैं और बड़ा आराम नलता है।

सारे शरीर को भाप देने की विधि यह है कि पीतल या टीन ो कोठी के बीचोबीच एक जालीदार चौकी रख दी जाती है। रोगी ो बिल्कुल उघाड़े बदन इस चौकी पर बैठा दिया जाता है और उसे ऊपर से चारों तरफ कम्बल से ढकने की ऐसी व्यवस्था कर दी जाती है कि आदमी को सांस लेने को हवा मिल सके। यह करके कोठी में उसके किनारे के सहारे खूब गरम पानी डाल दिया जाता है जो चौकी से डेढ़ दो इञ्च नीचे रहता है। रोगी को भाफ लेने से पहले एक अंगोछे या तौलिये को ठंडे पानी में भिगो कर उसे सिर पर लपेट लेना चाहिए, और इस तौलिये को बराबर भिगोकर ठन्डा रखना होता है।

श्री किशनलालजी ने अनुभव किया कि इस उपचार से जितना जल्दी लाभ होता है उतना किसी भी अन्य उपाय से नहीं होता। इस उपचार के साथ उपवास भी किया जाता था—वह तो सभी रोगों की रोकथाम करता है। खूब भूख लगने तक भोजन नहीं किया जाता था, करारी भूख लगने पर रसदार फल लिये जाते थे। पीछे क्रमशः गूदेदार

फल, सूखे मेवे, और दूध लिया जाता था। इस क्रम के बाद
ग्रहण किया जाता था। श्री किशनलालजी को इन बातों का ज्ञान
धीरे हुआ, और जैसे-जैसे अनुभव हुआ इन्होंने उसके अनुसार प्र
करके लाभ उठाया। इन्हें कुछ थोड़ी-थोड़ी खुजली तो कई साल
रही; कारण कि इनका यह रोग चरम सीमा को पहुंच गया था। य
पहले यह पद्धति अपनायी गयी होती तो रोग का निवारण जल्दी
हो जाना अनिवार्य था।

विशेष वक्तव्य—सन् १९०७ से १९२८ तक दवाइयों में विश्व
रखते समय श्री किशनलालजी ने अपने इलाज में हजारों रुपये ख
किये। पर परिणाम उलटा ही रहा। रुपया तो गया ही, स्वास्थ्य भ
चौपट हुआ। लम्बे अर्से तक जो कष्ट इन्होंने पाया उसे ये ही जान
हैं। इधर २६ साल से इन्होंने प्राकृतिक चिकित्सा अपनायी है। त
से इलाज के मद में एक पैसा खर्च नहीं हुआ, और स्वास्थ्य भी ठीक
रहा। जो व्यक्ति मुद्दत तक हर घड़ी मौत की राह देखता था, मौत को
बुलाता रहता था, वह अब जीवन का आनन्द ले रहा है। पिछले
जमाने की याद करके ये सोचते हैं कि मेरा कैसा सौभाग्य उदय ह
गया, परमात्मा का मुझ पर कितना अनुग्रह हुआ। क्यों न हो ये
प्रकृति की शरण गये हैं। इन्होंने प्राकृतिक जीवन अपनाया है तो पर
मात्मा का अनुग्रह होना ही चाहिये। प्रकृति परमात्मा का ही रूप है
बहुत से आदमी ईश्वर को नहीं मानते, वे भी प्रकृति (नेचर) को त
मानते ही हैं। अस्तु स्वस्थ और सुखी जीवन के लिए हमें यथासम्भ
प्रकृति के निकट रहना चाहिए, जहाँ तक भी बन पावे प्राकृतिक जीव
और रहन-सहन को अपनाना चाहिए, इसमें प्राकृतिक चिकित्सा व
बात स्वयं आ जाती है।

[३]

अपने घर वालों की चिकित्सा

घर का जोगी जोगड़ा, आन गाँव का सिद्ध।

—कहावत

यहाँ डाक्टर किशनलालजी द्वारा किये गये उन प्राकृतिक उपचारों में से कुछ की चर्चा की जायगी जो उन्होंने समय-समय पर अपने घर वालों के किये।

अपने परिवार वालों का इलाज करने में कठिनाई—प्रायः चिकित्सक को अपने घर वालों का स्वयं इलाज करने में बहुत कठिनाई आती है। प्रथम तो जब अपने घर का आदमी बीमार पड़ता है तो प्रायः चिकित्सक को उसकी बहुत चिन्ता हो जाती है। वह अपने मन को ठीक नहीं रख सकता। बहुधा उसके घर के अन्य व्यक्तियों को उस पर यथेष्ट श्रद्धा भी नहीं होती। इस प्रकार हमने देखा है कि अनेक बार जब किसी डाक्टर या वैद्य के परिवार के आदमी के इलाज का प्रश्न होता है तो कोई बाहर का चिकित्सक बुलाया जाता है, और बुलाया जाना ठीक समझा जाता है!

फिर, प्राकृतिक चिकित्सा तो अधिकांश लोगों के लिए नयी चीज है। वे डाक्टर या वैद्य की बात को तो मान्य कर लेंगे, पर प्राकृतिक चिकित्सा की बात सहज ही उनके गले नहीं उतरती। वे इसे स्वीकार

करके कोई जोखिम उठाना नहीं चाहते। इसलिए यदि किसी का पद्धति के प्रयोग का आग्रह हो तो सब का विरोध होना स्वाभा है। यदि किसी तरह प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ भी कर दी जाती तो जब इसके फल-स्वरूप रोगी में कोई प्रतिकूल लक्षण दिखायी लगता है तो सब झुंझलाने और बिगड़ने लगते हैं। उस दशा में व्यक्ति इस पद्धति का आग्रह करता है, उसे उस समय कोपभा बनना पड़ता है चाहे यह बात अल्पकाल के लिए ही हो। अस्तु, वि को अपने घर वालों के लिए इस चिकित्सा के प्रयोग करने में क कठिनाइयाँ आती हैं, इसमें बड़े धैर्य, गम्भीरता और सहनशीलता आवश्यकता होती है।

डाक्टर किशनलालजी के प्रयोग; अपने लड़के लालच का इलाज—डाक्टर साहब के पुत्र लालचन्दजी (उम्र साल भर) लगभग एक माह से कुकर खाँसी थी। उसके साथ घर के सब य को भी होने लग गयी थी। ये लोग उन्हें दवाइयाँ दे-दे कर परेशान रहे थे। एक दिन ऐसा हुआ कि रात के समय खाँसी की दवाई तो नहीं और बीमारी बहुत बढ़ गयी। रात के बारह बजे थे, सब बड़ी चिन्ता में थे। डाक्टर साहब ने लालचन्दजी को टब में स्नान कराया। दो मिनट बाद लालचन्दजी ऐसे सो गये कि ग लटक गयी। ये सोचने लगे कि न मालूम क्या हो गया। इन्होंने स्नान बन्द करके उन्हें सुला दिया। इस पर वे खूब आराम से सो करवट भी न बदली और दिन के लगभग बारह बजे जगे। उस उन्हें एक काला, बदबूदार और पतला दस्त हुआ। उसी दिन

द हो गयी, फिर, आज तक नहीं हुई। और हाँ, खाँसी घर पर से
विदा हो गयी।

लालचन्दजी ढाई साल के थे, तब ये मकान की २४ फीट ऊँची
सरी मंजिल की खिड़की में से गिर गये। नीचे पक्की नाली थी।
होश हो गये। डाक्टर साहब ने उन्हें कटि-स्नान कराया। रात तक
होश आ गया, और वे ठीक हो गये। कटि स्नान तीन-चार बार कराया
गया था, वह देखने वालों को बड़ा आश्चर्य और कौतूहल हुआ। यह
बात क्रमशः दूर-दूर तक फैल गयी, और वहाँ से आदमी इलाज के
लिए आने लगे।

भतीजे के रोने का इलाज—एक बार डाक्टर साहब के भतीजे
भालचन्द (उम्र १५ साल) को ऐसी बीमारी हो गयी कि वह हर
दूसरे-तीसरे दिन रोने लगता था। उसे देख कर घर वाले यह समझने
गे कि यह कोई भूत-प्रेत या देव-पितर आदि की बाधा है। उन्होंने
वाई के अतिरिक्त कई प्रकार की झाड़-फूंक और जंतर-तंतर किये।
रन्तु कुछ आराम होने में न आया; बल्कि बीमारी उत्तरोत्तर बढ़ती
ही गयी। आखिर डाक्टर साहब से प्राकृतिक चिकित्सा करायी गयी।
डेढ़ माह इलाज करने पर भालचन्द ठीक हो गया। अब पाँच साल
बीत गये हैं और उसे कोई तकलीफ नहीं हुई। इससे घर वालों को यह
विश्वास हुआ कि यह रोग भी पेट की खराबी से होता है। निस्संदेह
यदि खान पान और रहन-सहन ठीक रहे तो किसी प्रकार का रोग
न हो।

भौजाई का इलाज, बच्चा होने के समय; मिट्टी का जादू-

एक बार डाक्टर साहब की भौजाई को बच्चा होने के समय बड़ा क हुआ। रात के दो बजे थे, और उसके जीने की आशा बहुत कम गयी थी। बात यह थी कि बच्चा अपने स्थान से चल कर और आ बाहर आकर अटक गया था। बच्चा होने के समय का दर्द बन्द गया था और उसकी माँ बेहोश थी। डाक्टर साहब को जगाया गय इन्होंने पेड़ू पर ठंडी मिट्टी की पट्टी लगाने को कहा। इस पर दा ने आपत्ति की, उसने कहा कि सर्दी का मौसम है, हमने पीपला देकर गर्मी पहुंचायी है, ठंडी पट्टी से नुकसान होगा तो हम जि वार नहीं हैं। इस समय बच्चा होने का दर्द बन्द है, इसलिए यह न कहा जा सकता कि बच्चा होने में कितना समय लगे। आखि डाक्टर साहब के कहने से पट्टी लगायी गयी।

(इसके लिए मिट्टी ऐसी जगह से लानी होती है जहाँ मल-म आदि की गन्दगी न हो। मिट्टी चिकनी हो। पट्टी तैयार करने लिए मिट्टी को खूब बारीक पीस कर और छान कर साफ ठंडे पा में सान लिया जाय। फिर उसे टाट के एक टुकड़े पर लगभग आ इंच मोटाई में फैला दिया जाय। पीछे उस कपड़े को धीरे से हाथ पर उठा कर रोगी के शरीर के निर्दिष्ट स्थान पर इस तरह रख चाहिए कि मिट्टी त्वचा के ठीक ऊपर पड़े और कपड़ा उसके ऊ हो। पट्टी को दूसरे कपड़े से बांध दिया जाय। मिट्टी गरम हो ज पर पट्टी बदल दी जानी चाहिए। पट्टी हटाने पर उस जगह गीले अंगोछे से रगड़ कर धो डालना चाहिए और इसके बाद कुछ

लिए उस स्थान को गरम कपड़े आदि से ढककर जरा गरम कर
ा चाहिए।)

मिट्टी की पट्टी लगाने पर पाँच मिनट में बच्चे का जन्म हो
या और सब अचम्भा करने लगे। दायी ने डाक्टर साहब को कोई
त्र या जादू वाला समझा और कहा कि यह मंत्र हमें बता दो, यह
मारे बड़े काम का है। उसे यह विश्वास ही नहीं हो सका कि यह
ादू टोने की बात न होकर मिट्टी की करामात है। हमारे यहाँ दाइयों
के प्रशिक्षण में और चाहे जितनी बातें सिखायी जायँ, पर उन्हें मिट्टी
की उपयोगिता समझाने की व्यवस्था कहाँ है, और कितनी कम है!

अपने दोहते का बड़ी माता की बीमारी में इलाज; हवा की करामात—डाक्टर साहब के लड़के लालचन्द की शादी के समय इनकी लड़की कौशल्या के पुत्र ओमप्रकाश (उम्र ढाई साल) को बड़ी माता निकल आयी। उससे पहले इनके बड़े लड़के चुन्नीलाल के पुत्र को माता निकली हुई थी। इस वास्ते कौशल्या और उसके पुत्र को पास के दूसरे घर में भेज दिया गया। आठ दिन बाद, जब चेचक खूब भरी हुई थी, अचानक आधी रात के समय बड़े जोर से बिजली कड़की और बारिश शुरू हो गयी। फूस की छत से पानी टपक कर बच्चे की चारपाई पर गिरा। संभालते-संभालते भी बिस्तर के कपड़े भीग गये। इसी समय वर्षा से भीगी हुई एक बिल्ली चारपाई पर गिरी। कौशल्या को इस बदशगुन से चिन्ता हो गयी, उसे ओमप्रकाश के बचने की आशा न रही। डाक्टर साहब ने उसे समझाया तो भी उसे नींद न आयी।

सवेरे चार बजे बच्चे की सांस कुछ ज्यादा मालूम होती थी। शा
जी की बुआजी, जिन्हें कम सुनायी देता था, बच्चे के सांस की आवा
सुनकर शोर मचाने लगीं कि बच्चे की तकलीफ बढ़ गयी है, इसका इला
करो। डाक्टर साहब ने कहा कि दरवाजा खोल दो, वर्षा अब बन्द है
हवा खूब चलती है। बच्चे को बाहर ले जाकर इधर उधर टहलो। पू
का महीना और ठंड बहुत होने से कौशल्या को ऐसा करने की हिम्मत
नहीं होती थी, फिर बुआ जी भी उसे सर्दी से बहुत डराती थीं। आखिर
डाक्टर साहब का बहुत आग्रह होने पर कौशल्या बच्चे को बाहर ले
गयी। थोड़ी देर में वह घर के अन्दर आ गयी। बच्चा सो गया था।
बुआ जी ने कहा कि बच्चा अन्त की नींद ले रहा है। तुमने गजब कर
दि , इसे इस वर्षा की हवा में बाहर निकाल दिया। भरी माता में ऐसा
करने की बात मैंने अपने उम्र भर में कभी देखी क्या, सुनी भी नहीं। यह
कह कर वे रोने लग गयीं। इस पर कौशल्या का भी धैर्य जाता रहा।
वह रोती हुई अपनी मां के पास गयी और कहा कि तुम्हारा दोहता तो
जा रहा है, चलो देख तो लो।

कौशल्या की माता जी आयीं। डाक्टर साहब ने उन्हें समझाया कि
चिन्ता की बात नहीं। पर इससे उनका और खास कर बुआजी का
समाधान नहीं हुआ और बच्चे को छेड़ा गया जिससे वह जाग गया।
उस समय पांच बजे थे। डाक्टर साहब के कहने से उसे दूध पिलाया
गया तो वह लगभग डेढ़ पाव दूध पी गया, जब कि वह पहले इतने
सवेरे नहीं पीता था। इससे भी बुआ जी को तसल्ली नहीं हुई, उन्होंने
रोना-धोना जारी रखा। उनका कहना था कि यह दूध पीना तो मृत्यु
के समय का है। बच्चे से बात की, तो वह अच्छी तरह बोला। तो भी

ाश्वास न हुआ। दोपहर को जब उसे ठीक देखा तो सब को अचम्भा आ। बुआ जी कहने लगीं कि पानी की करामात तो मैंने पहले भी खी, पर हवा की करामात तो आज ही देखी है। अब मालूम हुआ क सर्दी में इतना ऊंचा बुखार हवा से जल्दी ठीक हो जाता है। मैं गह जगह ऐसा करूंगी और कराऊंगी।

अपनी पत्नी का इलाज, जो कोयले की गेस से मूर्छित थीं-
डाक्टर साहब की पत्नी एक दिन बहुत सवेरे स्नान-घर में नहाने गयीं, सर्दी का मौसम था, गरम पानी से स्नान किया जाता था। स्नान-घर की खिड़कियां बन्द थीं, इन्हें खोलने का ध्यान न रहा। स्नान के बाद इन्होंने, दूसरों को पानी गरम मिले, इसलिए हमाम में और कोयले डाल दिये। स्नान के बाद ये कपड़े पहन रही थीं कि कोयले की गैसों से वेहोश हो गयीं, धोती बांधते-बांधते गिर पड़ीं। संयोग से स्नान घर का दरवाजा कुछ खुला था। कुछ देर बाद घर वालों को इनका पता लगा। डाक्टर साहब ने देखा तो इनका बदन लकड़ी की तरह सख्त और जकड़ा हुआ था, नब्ज मालूम नहीं होती थी, आंखों की पुतलियां सफेद ही दिखायी देती थीं। इनका समाचार सुनकर बहुत से आदमी और औरतें इकट्ठी हो गयीं। सब इन्हें मरी हुई समझते थे। डाक्टर किशन-लाल ने इन्हें कटि-स्नान देने की बात कही तो आदमी इनकी 'वेवकूफी' पर हँसने लगे। किन्तु अन्त में स्नान दिया गया। कई मिनट कुछ असर मालूम न हुआ, स्नान का क्रम जारी रहा। ठंड का समय था, और पानी भी ठंडा ही था। रोगी को सर्दी से कँपकँपी आ गयी।

इसी समय स्वामी जी (चन्द्रप्रभु ब्रह्मवेत्तानन्द) डाक्टर साहब की पत्नी का समाचार पाकर यहां आ गये। रोगी को कांपते देखकर

उन्हों ने कहा कि 'बोलो ओम् तत् सत्'। इस पर डाक्टर साहब की पत्नी इन शब्दों का उच्चारण करने लगीं और इसकी रट ही लगा दी। दर्शक कहने लगे कि इनमें तो बाय आ गयी है, यह बच नहीं सकतीं। कुछ देर में ये सर्दी के मारे जोर से उछलने लगीं तो स्नान बन्द करके इन्हें रजाई आदि गरम कपड़े उढ़ा कर सुला दिया गया और गर्मी पहुंचाने के लिए चार आदमी एक एक हाथ और पैर को मालिश करने लगे। पहले बुखार १०१ डिग्री था, वह क्रमशः बढ़ कर १०४॥ हो गया। तब इन्हें फिर कटि-स्नान ठंडे पानी से कराया गया। अब दिन के ६॥ बज गये थे। स्नान देने से इन्हें सर्दी लगने लगी तो उठा लिया गया। बुखार १०० रह गया था, पर थोड़ी देर पीछे फिर १०४ हो गया। इस पर फिर कटि-स्नान दिया गया, और जब टब में सर्दी लगने लगी तो फिर इन्हें कपड़े उढ़ा कर सुला दिया गया।

अब इनकी नाक से काला पीला पानी गिरना जारी हुआ तो धारा ही बहने लगी। रात के दस बजे तक पानी पड़ता रहा। पीछे सिर का दर्द कम हो गया। बुखार जाता रहा। अगले दिन इन्होंने अपने आपको पूर्ण रूप से स्वस्थ अनुभव किया। तब इन्होंने बताया कि ये कैसे बेहोश हुई थीं। इससे डाक्टर साहब को मालूम हुआ कि कोयले की गैस से (या सांप के काटने से) जो आदमी मृतवत हो जाते हैं उनका उचित उपचार किया जाय तो वे प्रायः बच सकते हैं। डाक्टर साहब ने पीछे ऐसे कई रोगियों का इलाज किया और सफलता प्राप्त की।

प्रसूति के बाद इलाज—डाक्टर साहब के सबसे छोटे लड़के मोतीलाल का जन्म हुआ तो उसकी माता जी का उपचार प्राकृतिक

ाकित्सा पद्धति से ही किया गया था । उनके गर्भवती होने की
वस्था में देखने वाले उन्हें क्षय रोग बताने लग गये थे। वे पहले से
। बीमार थीं, और इधर तो नौ महीने बीमार ही रहीं । उनकी प्रसूति
ाक्टर साहब प्राकृतिक ढंग से ही कराना चाहते थे, पर वे सहमत न
ईं । इस लिए एलोपेथी-डाक्टर बुलाया गया । उसने उनके लिए दवाई
ी तीन खुराक दी । पहली खुराक लेते ही जलन पैदा हो गयी और
ुखार बढ़ गया । दूसरी खुराक से तकलीफ और अधिक हुई, तीसरी
ुराक से तो बहुत ही बेचैनी हो गयी । तब मोतीलाल की माता जी
्वाई बदलने को राजी हो गयीं । प्राकृतिक चिकित्सा आरम्भ हो
ायी । टब में नल के ठंडे पानी से 'मेहन' स्नान कराया गया । उससे
ुखार घट गया, जलन कम हो गयी और नींद भी अच्छी आयी । दोनों
समय पन्द्रह-पन्द्रह मिनट का मेहन स्नान कराया जाता था । पानी
चौकी से तीन इंच ऊंचा रखा जाता था । पहले ही दिन बहुत-कुछ
सफाई हुई । तीसरे दिन तो पूरी ही सफाई हो गयी । बुखार जाता रहा ।
कमर की पट्टी लगाकर इनकी पत्नी उठने-बैठने लगीं । आठ दिन में
शरीर बहुत अच्छा हो गया । उनकी छाती में दूध भी काफी आने लगा ।
इस समय खुराक दूध और फल की ही थी, जो महीना भर चलती रही ।
इससे शरीर के सब विकार दूर हो गये, उत्साह और स्फूर्ति बढ़ गयी ।

इस प्रयोग की सफलता से स्वयं डाक्टर साहब भी बहुत प्रभावित
हुए । उन्हें जीवन का एक नया दृष्टिकोण तथा नया रास्ता मिल गया ।
इसके बाद इन्होंने अपने परिवार में तथा दूसरों के यहां कई जापे
कराये । इन्हें यथेष्ट सफलता मिली । जच्चा और बच्चा दोनों ठीक
रहे । डाक्टर साहब बार-बार सोचते हैं कि प्रजनन अर्थात् सन्तान

का होना प्रकृति की एक स्वाभाविक क्रिया है। पर लोगों ने अ
रहन-सहन, खान-पान और उपचार आदि की कृत्रिमता से इसे व
जटिल बना दिया है। यदि हम सादगी का जीवन व्यतीत करें, आर
तलबी, विलासिता; शौकीनी, चटोरपना छोड़ दें, शरीर श्रम, संयम
प्राकृतिक उपचार आदि को अपनावें तो हम सहज ही अपने अ
कष्टों से मुक्ति पा सकते हैं। क्या हमें यह स्वीकार है ?

सबसे छोटे लड़के मोतीलाल के कई रोगों का इलाज—उ
के समय मोतीलाल की छाती बैठी हुई, टेढी मेढ़ी, अष्टावक्र की
थी। घरवालों ने तथा दूसरी बड़ी उम्र की औरतों ने उसे देख
कहा कि इसका बचना मुश्किल है, जब इसकी छाती ही ठीक नहीं
यह श्वास कैसे लेगा ! पर प्राकृतिक खान-पान और रहन-सहन से
धीरे-धीरे ठीक होता गया। लेकिन दो साल का होने पर उसे ड
निमोनिया हो गया। वह भी प्राकृतिक चिकित्सा से ठीक हो गया।
दिन में दो-तीन बार कटि-स्नान दिया गया था। इस बार उसकी छ
कुछ ठीक हो गयी और वह साधारण डील डौल वाला दिखायी
लगा। कुछ महीने बाद उसे बुखार हुआ और महामाई* के दौरे
लगे। कुछ समय कटि-स्नान से दौरे रुकते रहे। पर एक बार
दौरा आया कि नब्ज ही लापता हो गयी। सारा शरीर लकड़ी
कठोर हो गया। डाक्टर साहब ने कटि-स्नान कराया पर कुछ आ
नजर न आया। बच्चे की हालत बहुत खराब हो गयी, शरीर की
कत भी बन्द और आँखों की काली पुतली भी गायब। सब
कहने लगे कि ठंडे पानी का टब-स्नान देकर इसे क्यों मार रहे

---

* बच्चों का मृगि रोग, इसे आसेब भी कहते हैं।

वे डाक्टर साहब को भी चिन्ता हुई। पर इन्हें अन्दर से ऐसी
ावाज सुनाई दी कि घबराओ नहीं। इस पर इन्होंने एक मन बरफ
गायी और उसके पानी में मोतीलाल को फिर कटि-स्नान कराया।
ासे वह कुछ देर बाद काँपने लगा। तब इन्होंने उसे स्नान बन्द
ाके कपड़ा उढ़ाया और सुला दिया। दस मिनट बाद उसका काँपना
न्द हो गया तो इन्होंने उसे फिर कटि-स्नान कराया। इस प्रकार यह
कया चार बार होने पर उसे चेत हो गया। आँखों में काली पुतली
जर आने लगी, बन्द मुट्ठी खुल गयी, दाँत जो पहले प्रयत्न करने से
ो नहीं खुलते थे, अब स्वयं खुल गये। नब्ज चलनी शुरू हो गयी,
ारीर नरम होकर हरकत करने लगा। मोतीलाल ने रोते हुए पानी
ांगा, यह देख कर सब चकित हो गये। मोतीलाल को रात को सात
ाजे बड़े जोर का, बहुत अधिक परिमाण में, और बदबूदार काला दस्त
ुआ, उसमें गाँठें ही गाँठें थीं। कितना मलबा पेट में भरा था! अस्तु,
अब पेट साफ हो गया और मोतीलाल आराम से सो गया। फिर वह
ठीक हो गया, कमजोरी तो बहुत थी, वह धीरे-धीरे दूर हो गयी।
तीन साल बाद जब मोतीलाल नौशेरा से श्रीमाधोपुर आ गया था,
उसे फिर दौरा हुआ, उपर्युक्त विधि से उसका इलाज हो गया। उसके
बाद फिर कभी दौरा नहीं हुआ। उसका रोग चला गया, और वह
अच्छा सुन्दर लड़का बन गया।

प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा—मोतीलाल को देखकर जब
कभी डाक्टर साहब को उसकी पहले की शक्ल-सूरत और बीमारी की
हालत याद आ जाती है तो इनके सामने प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा

का जीता-जागता एक स्थूल और प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हो जाता
ये ईश्वर को बहुत-बहुत धन्यवाद देते हैं कि इन्हें प्राकृतिक चिवि
का कुछ ज्ञान हो गया और ये बहुत से आदमियों को इससे ल
पहुंचा सके। डाक्टर साहब को बहुत ही अफसोस है कि उन्हें
चिकित्सा पद्धति का ज्ञान पहले नहीं हुआ। यदि पहले इसका ज्ञ
होता, तो उन्हें पक्का विश्वास है कि उनका सबसे बड़ा लड़का आनन्
लाल भी इस रोग में अवश्य ही बच जाता। उस समय ये डाक्ट
वैद्यों, हकीमों के ही नहीं, सयानों के भी चक्कर में थे। अपने उस
के वियोग से डाक्टर साहब छः महीने दीवाने से रहे, इनके शोक
क्या कहना! डाक्टर साहब का मत है कि हमारा सारा परिवार प्रा
तिक चिकित्सा के कारण ही बचा है।

---

[४]

प्राकृतिक चिकित्सा के चमत्कार

प्राक्कथन—जिन लोगों ने बचपन से यही संस्कार पाया है कि दवाई बिना रोग नहीं जाता, जो तरह-तरह की औषधियाँ और इन्जेक्शन आदि लेते रहते हैं, तो चाहे उन्हें अनेक बार बहुत कष्ट भी भोगना पड़े और वे अस्वस्थ भी बने रहें. उन्हें यह विश्वास होना कठिन है कि मिट्टी, पानी, हवा, धूप आदि के उपचार से ही शरीर की विविध प्रकार की व्याधि हट सकती है। जब कभी ऐसे आदमी इलाज कराते-कराते उकता जाते हैं, और निरोग नहीं होने पाते तब ही वे प्राकृतिक चिकित्सा कराने की बात सोचते हैं। उनका विचार होता है कि और कोई उपाय नहीं है तो इसी का प्रयोग करके देखें शायद भाग्य से कुछ लाभ हो ही जाय। इन लोगों को अपनी प्राकृतिक चिकित्सा कराने से जो सुखदायी अनुभव होता है तो वे इस पद्धति से बड़े प्रभावित होते हैं, उन्हें बहुत आश्चर्य होता है कि प्रकृति के दिये, बहुत ही साधारण या नगण्य समझे जाने वाले पदार्थ इतने गुणकारी हो सकते हैं, और ये ऐसा चमत्कार कर देते हैं।

यहाँ हम डाक्टर किशनलालजी के उन प्रयोगों में से कुछ का वर्णन करते हैं जो पश्चिमोत्तर सीमाप्रान्त (भारत के विभाजन से पहले) में किये गये। वह प्रदेश बहुत ठंडा है। वहाँ विशेष अस्पताल आदि नहीं थे। इसलिए वहाँ रोगी सभी प्रकार के और बड़ी संख्या में आते थे।

बच्चे को बुखार १०३।। डिग्री था। इन्होंने उसका इलाज ठंडी ह
किया। उसके सब कपड़े उतरवा दिये और उसे चांदनी रात में
छत पर दरी बिछा कर उस पर लिटा दिया। ४५ मिनट बाद उ
बुखार उतर गया, और सबेरे तक वह बिल्कुल ठीक हो गया।

गठिया और हिचकी का रोगी–सदर बाजार के लाला मनो
लाल कबाड़ी को वादी गठिया की इतनी तकलीफ बढ़ गयी थी कि उ
मरने की आशंका हो चली थी। अन्त में डाक्टर साहब को बुला
गया। रात के बारह बजे थे। उनकी प्राकृतिक चिकित्सा की गयी
ठंडे पानी में आधे घन्टे के कटि-स्नान से उसे आराम मिला और अच्छ
नींद आयी। सबेरे उठा तो उसकी तबियत ठीक थी। पीछे उसका डे
माह दूध-कल्प किया गया। उससे वह खूब हृष्ट-पुष्ट हो गया। उ
कर लोगों को आश्चर्य हुआ, उनकी प्राकृतिक चिकित्सा में श्रद्ध
बढ़ना स्वाभाविक ही था।

डाक्टर परिवार के रोगी की प्राकृतिक चिकित्सा–नौशेर
स्टेशन पर विद्या नाम की लडकी थी। उसके पिता नामी डाक्टर थे, और
उस के भाई भी डाक्टरी करते थे। विद्या को टाइफाइड अर्थात् मोती-
झरा हुआ, साढ़े तीन माह हो गये। उसके जीने की आशा न
रही। उसकी प्राकृतिक चिकित्सा शुरू की गयी, उस समय १०४ डिग्री
बुखार था जो बना ही रहता था। पन्द्रह दिन के इलाज से वह खूब
खाने लग गयी और अच्छी होकर स्कूल में पढ़ने को जाने लगी। इससे
उसके पिता और भाई एलोपेथी पद्धति वाले होने पर प्राकृतिक चिकि-
त्सा को बहुत मानने लगे। उन्होंने पीछे कई रोगी इलाज के लिये
डाक्टर किशनलाल जी के पास भेजे।

सर्दी में छोटे बच्चे के सिर पर ठंडी पट्टी—लाला दीवानचन्द आय वाले नौशेरा छावनी में बड़े प्रतिष्ठित दुकानदार थे। उनके छोटे बच्चे का, जो दस दिन का होगा, सिर गल गया। उन्होंने डाक्टर साहब को बुलाया। सर्दी बहुत जोर की थी, उस मौसम में इतने छोटे बच्चे के सिर पर मिट्टी की ठंडी पट्टी लगाना बड़े ही साहस का काम था। पर, डाक्टर साहब ने अपने अनुभव के बल पर यही प्रयोग किया। सवेरे तक तीन बार पट्टी बदली गयी। बच्चे को बुखार तेज था, उसमें आराम हुआ। तीन–चार दिन बाद बच्चे का सिर साफ नजर आने लगा। कुछ दिन बाद बाल आने लगे, पीछे तो उसका सिर ठीक होकर बालों से भर गया।

गर्भवती स्त्री का उपचार-लाला ज्ञानचन्द (उपर्युक्त श्री दीवानचन्द के भाई) की स्त्री गर्भवती थी, उसे गर्भ का नवां महीना था। उसे बड़े जोर का, १०५॥ डिग्री का, बुखार हो गया। उसे किसी भी उपचार से लाभ नहीं पहुंचा। डाक्टर साहब ने प्राकृतिक चिकित्सा का वेट–शीट-पेक प्रयोग किया। इससे उसका बुखार जाता रहा और वह दो तीन दिन में ठीक हो गयी। पूरे समय पर उसके स्वस्थ बच्चा हुआ।

जब इन्जेक्शन असफल रहे और पानी ने काम किया—लाला दीवानचन्द जी के बहनोई कृष्णलाल जी को बुखार १०५॥ डिग्री का हो गया था। डाक्टर गुरुबख्स सिंह एम० बी० बी० एस० का इलाज आरम्भ किया गया। तीसरे दिन बुख़ार चला गया। तब इन्जेक्शन इस लिए दिये गये कि बुखार रुका रहे, अर्थात् फिर न आये।

पर बुखार हो ही गया। अब बड़ी चिन्ता हुई। कोई उपाय सम
नहीं आता था। आखिर डाक्टर किशनलाल जी को बुलाकर प्रा
चिकित्सा करायी। इन्होंने पानी से इलाज किया, और वह ऐसा
हुआ कि अन्य चिकित्सक चकित रह गये। १५ मिनट में ही
चला जाने और पसीना जोर से आने से घर वालों ने घबरा क
डाक्टर साहब को फिर बुलाया। इन्होंने उनका समाधान कर दि
रोगी क्रमशः ठीक हो गया।

डाक्टर शिष्य बन गया, परित्यक्त महिला गृह स्वामि बनी—एक बार रिसालपुर छावनी से एक डाक्टर इन डाक्टर सा
के पास २१ वर्ष की आयु वाली वृन्दा नाम की लड़की को लाये। इन्ह
कहा कि मैंने तीन सौ रुपये में इस लड़की के इलाज का ठेका लि
था। चार महीने हो गये, यह ठीक नहीं हुई। मेरा कथन है कि य
यह ठीक होगी ही नहीं, और अगर कोई इसे ठीक कर दे तो मैं उस
शिष्य हो जाऊंगा। अपनी दुकान फूंक दूंगा और इसे दुगनी र
वापिस कर दूंगा।

डाक्टर साहब के पास उस समय चिकित्सा के लिए यथेष्ट स्था
न था। इन्होंने लड़की का वजन ले लिया और उसे कटि-स्नान, मिट्
की पट्टी और मेहन स्नान आदि की विधि बता दी। लड़की यह स
उपचार अपने घर पर करने लगी। एक सप्ताह बाद वह इनके पा
आयी, उसका वजन किया गया तो दस पौंड बढ़ा हुआ मिला। इ
पर डाक्टर साहब को बड़ा आश्चर्य और अविश्वास-सा हुआ। किन्
लड़की ने कहा कि मैं इस सप्ताह पहले से बहुत अच्छी रही हूँ,
बुखार दिन-दिन कम हो रहा है, और खाना-पीना भी अच्छा ह

। मेरे शरीर में स्फूर्ति है। इसलिए मेरा वजन जरूर बढ़ा है। अस्तु, डाक्टर साहब ने उसे आगे का कार्यक्रम बता दिया। अगले सप्ताह वह आयी तो उसका वजन दस पौंड और बढ़ा हुआ मिला। अब तो डाक्टर साहब को पिछली बार के वजन बढ़ने की बात पर भी अधिक विश्वास हुआ और इन्होंने बड़े उत्साह से उसका इलाज जारी रखा। इससे उसका वजन क्रमशः बढ़ता रहा, यहां तक कि दो माह में साठ पौंड बढ़ गया और वह स्वस्थ हो गयी।

इस लड़की के पति श्री मिट्टी लाल लाहौर में एक चमड़े का कारखाना चलाते थे। वह बड़े धनी और सम्पन्न थे, उनके नाम की एक स्ट्रीट (बाजार) भी थी। वह अपनी पत्नी को स्थायी रूप से रोगी रहती देख कर हमेशा के लिए उसके पीहर रिसालपुर छोड़ गये थे। उन्हें जब उसके रोगमुक्त होने का समाचार मिला तो उन्होंने डाक्टर साहब को बहुत धन्यवाद दिया और अपनी पत्नी को अपने यहां लाहौर ले गये। इस प्रकार प्राकृतिक चिकित्सा से वृन्दा देवी को वह दाम्पत्य जीवन प्राप्त हुआ जिसकी उसे अपने पति की स्वार्थमय, अनुदार तथा हीन मनोवृत्ति के कारण कुछ आशा न रही थी। आह! समाज में न मालूम कितने मिट्टीलाल हैं, जो अपनी पत्नी को केवल अपने सुख के लिए रखते हैं। जब पत्नी बीमार हो जाती है और उसके रोग मुक्त होने की आशा नहीं रहती तो कितने फीसदी आदमी हैं, जो उस दशा में भी उसके प्रति सेवायुक्त कर्तव्य का पालन करते हैं।

अच्छा, अब उन एलोपेथिक डाक्टर महोदय की बात लें जिन्होंने पहले वृन्दादेवी के इलाज का ठेका लिया था। वे श्री किशनलाल अग्र-

वाल के पास आये और प्राकृतिक चिकित्सा की प्रशंसा करते हुए इनसे कहने लगे—'मैंने जो प्रतिज्ञा की थी, उसके अनुसार मुझे अपनी दुकान फूंक देनी चाहिये। परन्तु अगर मैं ऐसा करूं तो मेरा निर्वाह कैसे होगा ! मैं आप से क्षमा-याचना करता हूँ और उस प्रतिज्ञा को वापिस लेता हूँ। रही बात आपका शिष्य होने की। वह तो मुझे स्वीकार ही है। मैं प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा नहीं जानता था, अब मुझे इसका चमत्कार मालूम हुआ।

मलेरिया बुखार की आश्चर्यजनक चिकित्सा—पेशावर के डेरी फार्म में श्री बाबूलाल नाम के हेडक्लर्क ने इनके पास दमे का इलाज कराया था, इससे उसे प्राकृतिक चिकित्सा पर विश्वास हो गया। उसके लड़के ओमप्रकाश को मलेरिया बुखार हुआ। जब कई दिन अन्य डाक्टरों का इलाज कराने से कुछ लाभ न हुआ तो ओमप्रकाश को उसकी पत्नी सहित इन डाक्टर साहब के पास भेज दिया। ये उसे अपने सेनिटोरियम (वेला) में ले गये, जो नौशेरा छावनी के कम्पनी बाग के पास था, और जहां उन दिनों और भी कई रोगियों का इलाज हो रहा था। उसे दरिया के पानी में प्राकृतिक स्नान कराया गया तो बुखार १०२ से १०३ हो गया, फिर स्नान कराया तो १०४ और उसके बाद क्रमशः १०५ और १०५॥ हो गया। इस पर सब लोग डाक्टर साहब पर बिगड़ने लगे। उन्होंने कहा कि बुखार बराबर बढ़ता जा रहा है, और आप हठ करके उसे ठंडे पानी में नहला रहे हैं। यह सुन कर ओमप्रकाश की पर्दा करने वाली पत्नीने भी अपना विरोध और झुंझलाहट प्रगट की। डाक्टर साहब ने सब को समझाया

के दरिया का पानी कम ठंडा है और बुखार जोर पर है। इस पर सब ने मानो विद्रोह करने की ही ठान ली।

संयोग से उसी समय जोर से आंधी आ गयी और ओले पड़ने लगे। हवा बहुत ठंडी हो गयी। सब रोगी अपनी-अपनी कुटियाओं में जा घुसे, केवल डाक्टर साहब, ओमप्रकाश और उसकी पत्नी ही उस जगह रहे। ओले की हवा लेने से ओमप्रकाश दो मिनट बाद ही कहने लगा कि अब तो सर्दी लगने लगी है। उसे देखने से मालूम हुआ कि नब्ज स्वाभाविक रूप में है, शरीर का तापक्रम ६८। है। पर ओम प्रकाश को यह चिन्ता हुई कि बुखार १०५॥ से एक दम ६८। पर आ गया, यह अच्छा नहीं हुआ। वैसे उसे अपनी तबियत ठीक मालूम हुई। डाक्टर साहब ने उसे प्रकृति का यह चमत्कार समझाया और बताया कि इस प्रकार एक दम बुखार उतर जाने से कोई हर्ज नहीं, यह अच्छा ही है। फिर तो ओमप्रकाश में ऐसी हिम्मत हो गयी कि वहां कोई तांगा आदि न मिलने पर वह पैदल ही और खुशी-खुशी अपने घर आ गया, जो वहां से लगभग दो मील दूर था।

ओम प्रकाश के पिता श्री बाबूलाल, तथा अन्य जिन-जिन सज्जनों को इस घटना की जानकारी हुई वे डाक्टर साहब की दृढ़ता की प्रशंसा करने लगे और प्राकृतिक चिकित्सा में दृढ़ विश्वास करने लगे। हां, उस दिन यदि प्रकृति ने ओलों की वर्षा करके हवा बहुत ठंडी न की होती तो ओमप्रकाश का बुखार उतरने में देरी लगती, यों उतरता तो जरू ही। डाक्टर साहब को अकस्मात प्रकृति की उक्त सहायता मिलने प बड़ा हर्ष हुआ।

आपरेशन से बची, खर्च से भी बची—रावलपिंडी से (अध्यापिका मरदान छावनी में ईसाई मिस के पास पेट का आपरेश कराने के लिए डेढ़ माह की छुट्टी लेकर आयी। परन्तु मिस उस सम किसी कार्यवश विलायत गयी हुई थी। अध्यापिका निराश होकर लौ रही थी कि उसे डाक्टर साहब द्वारा प्राकृतिक चिकित्सा करने की ब मालूम हुई। इस पर वह इनके पास आयी। इन्होंने देखा कि पेट एक बड़ी गांठ है, और पेट बहुत कड़ा है। इन्होंने चिकित्सा आरं करते हुए उसे उपवास करने का आदेश किया, तो उसने कहा कि ि धर्म में उपवास करना मना है। लेकिन आखिर, वह समझाने से मा गयी। उपवास की अवधि पहले से निश्चित नहीं की गयी थी। र कह दिया था कि ठीक भूख लगने पर खाना दिया जायगा। इस प्रक ।पवा। का क्रम एक सप्ताह चला। इस बीच में पेट पर मिट्टी व पट्टी लगायी जाती थी, एनीमा दिया जाता था। प्राकृतिक स्नान औ कटि स्नान कराया जाता था। पीने के लिये सादा पानी दिया जा था। सारे दिन वेला (सेनिटोरियम) में ठहर कर शुद्ध ताजी हवा ; जाती थी। भूमि पर बिना कपड़ा बिछाये सोया जाता था।

सातवें दिन देखा तो पेट में कोई गाँठ आदि न थी। पेट स था। अध्यापिका आश्चर्यपूर्वक कहने लगी—'कैसा अच्छा हुआ, आ रेशन से बची, खर्च से भी बची। डेढ़ माह खाट पर पड़ा रहना पड़त प्राकृतिक चिकित्सा की कहां तक प्रशंसा की जाय।'

अब दवाई का नाम न लूँगी—एक बार आर्य समाज स्त्र की मुख्य अध्यापिका (हैड मिस्ट्रेस) के हाथ-पाँव और सारे बदन

ऐसी खुजली हो गयी कि उससे स्कूल में पढ़ाना तो दूर रहा, वहाँ पर बैठते भी नहीं बनता था। उसने दो माह बड़े-बड़े डाक्टरों से इलाज कराये, कितने ही इन्जेक्शन लिए पर रोग बढ़ता ही गया। की प्राकृतिक चिकित्सा की गयी—कटि-स्नान, भाप-स्नान और प्राकृतिक खान-पान। वह क्रमशः ठीक होने लगी, पन्द्रह दिन में पूर्ण स्वस्थ हो गयी। उसे बहुत ही अचम्भा हुआ कि ऐसी कठिन बीमारी बिना दवाई के केवल मिट्टी और पानी के प्रयोग से कैसे चली गयी। वह कहने लगी कि अब मेरा औषधियों पर से विश्वास बिल्कुल उठ गया है। मैं उनका नाम न लूँगी। वे तो बीमारियाँ बढ़ाने वाली हैं। प्राकृतिक चिकित्सा की बात मेरे गले नहीं उतरती थी, पर अब स्वयं उससे होने वाले चमत्कार का अनुभव करके मेरी इस पर बहुत ही श्रद्धा हो गयी है। मैं अपने क्षेत्र में इसका खूब प्रचार करूँगी।

१०७ डिग्री के बुखार में बरफ के पानी का स्नान—एक बार डाक्टर साहब की सराय में जहाँ कुछ किरायेदार रहते थे नीकामल नाम का एक गरीब आदमी बीमार हुआ। उसका दामाद सरकारी अस्पताल में डाक्टर था, उसने उसका इलाज किया, पर कुछ आराम नहीं हुआ। यहाँ तक कि एक दिन उसे बुखार १०७ डिग्री हो गया। उसकी जीभ पर कांटे से हो गये। उसने डाक्टर किशनलालजी से चिकित्सा के लिए कहा। इन्होंने नीकामल को टब में बरफ डाल कर उसके पानी में बैठा दिया। पन्द्रह मिनट बाद बुखार १०२ डिग्री रह गया। अगले दिन रोगी को बहुत आराम हो गया। कमजोरी तो रही, वह धीरे-धीरे दूर हो गयी।

रघुवर दयालजी गोयल का वजन घटा—बीकानेर रघुवर दयाल गोयल (खाद्य मंत्री, राजस्थान) का वजन २०० पौं शरीर मोटा था। इन्होंने अपना वजन कम करने के लिए कई कराये, पर सफलता न पायी। १ जनवरी १९५१ से इनकी यहाँ त्सा की गयी। तीन दिन उपवास कराकर इन्हें पत्तीदार सागों और रसीले फल दिये गये। ठंडे गरम स्नान, कटि-स्नान, एनीमा गया। सर्दी का मौसम था। इनके सब कपड़े उतार कर इन्हें और वायु-स्नान भी कराया गया, धूप-स्नान पर तो विशेष जोर ही गया। पन्द्रह दिन में वजन घट कर १७५ पौंड रह गया। अ वह लगभग १४५ पौंड ही है। शरीर बहुत हल्का है। ये प्राकृ चिकित्सा से बहुत प्रभावित हैं, और अपने मिलने वालों से इसी चि त्सा पद्धति को अपनाने का आग्रह करते रहते हैं।

श्री सिद्धराज ढड्ढा और उनके पिता की चिकित्सा—ज पुर निवासी श्री सिद्धराज ढड्ढा टायफाइड से पीड़ित थे, नाड़ी हुई थी, तापमान ९७.४ था। इनका उपचार प्राकृतिक ही था, पर उ इन्हें यथेष्ट लाभ नहीं हो रहा था। उस पर विचार करने और आ श्यकता हो तो कुछ परिवर्तन करने का सुझाव देने के लिए १५ जन १९५१ को डाक्टर किशनलाल बुलाये गये। पहले ढड्ढाजी को रोज फुट बाथ (पैर-स्नान), स्पंज बाथ, एनिमा दिया जाता था। खाने मुनक्का का पानी दिया जाता था। डाक्टर साहब ने इसे बन्द क धूप-स्नान आरम्भ किया। खाने को केवल सन्तरा दिया गया। पाँच-स दिन बाद जब ये दस-बारह सन्तरे लेने लगे और इनके शरीर में कु

कत आयी तो धूप सेवन की सुविधा के लिए ये दुर्लभ भवन में चले ये, कारण इनके मकान में धूप सिर्फ दोपहर को ही आती थी। नये कान में सिद्धराज जो बारह दिन रहे। ये धीरे-धीरे बढ़ कर ३०-३५ न्तरे लेने लग गये। इनका वजन क्रमशः बढ़ता रहा, कई दिन तो जाना एक पौंड बढ़ा। पीछे स्वच्छ वायु की दृष्टि से ये प्राकृतिक चिकित्सालय में ही आ गये और स्वस्थ होने तक यहाँ रहते रहे! ढड्ढा जी को दण्ड बैठक आदि व्यायाम पसन्द न था। डाक्टर साहब के सुझाव पर इन्होंने चक्की चला कर आटा पीसने का उत्पादक श्रम किया। पीछे ये इसके बड़े समर्थक और प्रशंसक हो गये।

सिद्धराजजी के पिता श्री गुलाबचन्दजी श्वास रोग से पीड़ित थे। ये एलोपेथी और आयुर्वेदिक चिकित्सा करा चुके थे। उससे आराम होते न देख कर, तथा सिद्धराजजी को प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ पहुंचने का प्रत्यक्ष अनुभव करके इन्होंने भी यही चिकित्सा करायी। सर्दी का मौसम था, और बहुत ठंड थी, इससे ये कपड़े नहीं उतारते थे, क्रमशः इनका विचार बदला और ये उघाड़े बदन खूब ठंडी हवा का सेवन करने लगे। इन्हें धूप-स्नान और ठंडे जल का स्नान कराया जाता था। इससे इन्होंने स्वास्थ्य लाभ किया।

रामनिवासजी की पेट की असह्य पीड़ा—जयपुर स्टेशन पर लकड़ी गोदाम के मालिक श्री पूरणमल २७ जून १९५२ को अपने पुत्र रामनिवास (उम्र ३५ साल) को लेकर आये जिनके पेट में दो दिन से बड़ा ही दर्द था, अपान वायु नहीं निकलती थी, टट्टी की तो बात ही क्या! इनका पेट फूला हुआ होने से असह्य कष्ट था। इनकी इस दशा

हवास भी ठीक नहीं था, बेहोशी में कुछ बकने लगते थे। सुन
कम हो गया था। हालत बहुत ही खराब थी। धन्वंतरी औषध
वैद्य पूर्णानन्दजी ने एक सप्ताह उनका इलाज करके देखा, पर कु
लता न मिली। आखिर वे यहाँ १८ जून १९५१ को प्राकृतिक चि
लय में आये। उन्हें रात दिन चालीस-पचास बार टट्टी जाना
था, खून और राध आती थी। कभी-कभी खांसी से भी खून आत
यहाँ इलाज में उपवास करा कर कटि-स्नान और मिट्टी की पट्
प्रयोग हुआ। वे क्रमशः ठीक होने लगे। चार दिन में उन्हें
नियमित रूप से दिन में दो बार होने लगी। धीरे-धीरे रंग ब
लगा। महीने भरमें वह ठीक होकर चले गये। वे अब पहले से
अधिक हृष्ट-पुष्ट और स्वस्थ हैं। अहा! प्राकृतिक चिकित्सा कि
सुगम है, पर हम भूले हुए हैं, और इलाज के नाम पर औषधि
ले लेकर नयी-नयी बीमारियों के शिकार होते और मानव जीवन
दुःखमय बनाते हैं।

अनन्त बहिन का जापे का बुखार—सन् १९५४ के दिस
माह की बात है। चिकित्सालय के मंत्री श्री रामेश्वरजी ने डाक्टर सा
से कहा कि रींगस में अनन्त बहिन के लड़की हुई है, वह चार दिन
है और अनन्त बुखार, खांसी तथा छाती के दर्द से पीड़ित है। डाक्
साहब ने वहाँ जाकर रात को तीन बजे उसे देखा। तापमान १०४
डिग्री था। बुखार जापे का मालूम हुआ।* इन्होंने कहा कि अनन्त

*बार-बार थोड़ी-थोड़ी सर्दी लगना, बदन मामूली गरम रहना, और
ऊँचा बुखार होना, खाँसी और दर्द का रहना—ये जापे के बुखार के लक्षण
होते हैं।

ो ठंडे पानी में मेहन स्नान (सिट्स बाथ) देना चाहिए। मौसम सर्दी ा था, अनन्त को गरम कपड़े पहने हुए भी ठंड लगती थी, वह रात ो ग्यारह बजे ठंडे पानी से स्नान लेने को राजी नहीं हुई। पर ामेश्वरजी तथा डाक्टर साहब के समझाने से मान गयी। उसे ोहन स्नान कराया गया। वह रात को सोयी तो उसे पसीना आया। सवेरे बुखार उतर गया। खांसी या दर्द भी न रहा। रामेश्वरजी को ात भर बड़ी चिन्ता रही थी, अब यह हाल जान कर बहुत ही प्रसन्न ुए। वे डाक्टर साहब से कहने लगे कि अनन्त को दसमूल का काढ़ा ो दे देवें, उसमें क्या हरज है। डाक्टर साहब ने कहा कि काढ़े में क्यों दो-चार पैसे खोते हो, अनन्त अच्छी हो गयी है, प्रकृति पर विश्वास करना चाहिए।

वैद्य जी और प्राकृतिक चिकित्सा

'चिकित्सक ऐसा होना चाहिए जिसने गुरु द्वारा वैद्य विद्या
की हो, जो मीठा बोलने वाला हो, जो उपचार में कुशल हो, जो
हंकार हो, जो धैर्यवान, कृपालु और शुद्ध अन्तःकरण वाला हो !'

'बिना औषधि के, पथ्य से रोग निवृत्त हो जाता है, परन्तु प
विहीन का तो सैकड़ों औषधियों से भी रोग दूर नहीं होता।'

पहले कहा गया है कि गांधी नगर (जयपुर) के प्राकृतिक चि
... में डाक्टर किशनलालजी को प्रारम्भ (सन् १९५०) से
श्री शम्भूप्रसाद वैद्य का अच्छा सहयोग मिला। वास्तव में यह चि
त्सालय अब तक जनता की जो कुछ सेवा कर सका है, उसमें ख
चिकित्सा सम्बन्धी श्रेय इन्हीं दो सज्जनों को है। इनमें श्री किशनला
के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। यहाँ यह विचार किया जा
है कि शम्भूप्रसादजी ने किस प्रकार पहले आयुर्वेदिक पद्धति
चिकित्सा का ज्ञान और अनुभव प्राप्त किया और पीछे किस प्रका
इनका यहाँ इस चिकित्सालय से सम्बन्ध हुआ तथा इसके बाद इनक
चिकित्सा सम्बन्धी क्या दृष्टिकोण बना।

शम्भूप्रसादजी; इनके माता-पिता—शम्भूप्रसादजी का जन्म
सम्वत १९७६ है। इनके पिता श्री लालजीमल शाहजहाँपुर में रहा करते
थे। यह स्थान पहले गुड़गाँव जिला (पंजाब) में था, अब अलवर

ला (राजस्थान) में है। लालजीमल जी साधारण स्थिति के थे। म्भूजी की माता का नाम महादेवी है। माता और पिता दोनों में तिथि सत्कार की भावना खूब थी। माताजी का स्नेह गाँव में बड़े-टे सब पर रहा, इन्होंने निर्धन होते हुए भी अपने परिश्रम और वा-भाव से हरेक के दिल में घर कर लिया और अच्छी प्रतिष्ठा यी। हमें इनके दर्शन का अवसर मिला है और हमने इन्हें स्नेह-र्ति पाया। शम्भू जी में जो सेवा-भाव है, वह खास कर इनकी माता ी की ही देन है।

शिक्षा—शम्भू जी शाहजहाँपुर में तीसरी कक्षा तक पढ़े, पीछे उनके भाई ताराचन्दजी इन्हें श्रीमाधोपुर (जयपुर) ले आये। बाद में इनके फूफा जी ने इन्हें संस्कृत पढ़ाने की व्यवस्था की, और महन्त श्री जानकीदास जी के पास पढ़ने को भेजा। यहाँ से इन्होंने बंगाल संस्कृत एसोसियेशन की प्रथमा परीक्षा पास की। नवलगढ़ विद्यालय में इन्होंने बनारस की प्रथमा परीक्षा के प्रथम खंड की पढ़ाई की। यहाँ से ये नारनौल गये, वहाँ की संस्कृत पाठशाला से कलकत्ते की मध्यमा व्याकरण का दूसरा और तीसरा खंड पास किया।

आयुर्वेदिक चिकित्सा का अनुभव—इसी बीच में शम्भू जी के पिताजी तथा फूफा जी का देहान्त हो गया। इनका विवाह भी हो जाने से घर का खर्च चलाने का भार इन पर आया। इसलिए इन्होंने रामगढ़ के गोपीराम बनारसीदास रुइया विद्यालय (चिकित्सालय) में अध्ययन करने के साथ-साथ कम्पाउंडर का काम भी किया। इससे इन्हें प्रयोगात्मक ज्ञान तथा अनुभव हुआ। 'निखिल भारतवर्षीय विद्यापीठ' लाहौर के नवलगढ़ केन्द्र से विशारद परीक्षा देकर ये अपने घर शाह-

जहांपुर आ गये और यहां आयुर्वेदिक पद्धति से चिकित्सा करने लगे
इस प्रकार इनका गांव वालों से सम्पर्क बढ़ा और इन्हें आमदनी हो
लगी । यह क्रम सात-आठ साल चला, इस बीच में दो साल इन्हों
रामकुंवर बनारसीदास धमर्थि औषधालय में भी काम किया ।

पुत्र की बीमारी में उसकी प्राकृतिक चिकित्सा—इनके भा
श्री ताराचन्द गर्मी की छुट्टियों में शाहजहाँपुर आये तो इनके पुत्र विन
कुमार (आयु लगभग तीन साल) को, जिसे साधारणतया माली क
कर पुकारा जाता है, अपने साथ श्रीमाधोपुर ले आये । यहाँ य
बालक एक बार बहुत सख्त बीमार पड़ गया । मुंह में झाग आ गये,
हाथ-पैर अकड़ गये, पेट पर अफरा और दस्त बन्द हो गया । बेहोशी
तो थी ही । इस प्रकार बालक के जीने की आशा न रही थी । ऐसी
स्थिति में उसका इलाज डाक्टर किशनलाल जी ने प्राकृतिक चिकित्सा
पद्धति से किया । तीन चार घंटे में उसे स्वास्थ्य लाभ हुआ ।

शम्भू जी को प्राकृतिक चिकित्सा की प्रेरणा—श्री ताराचन्द
जो अपने भतीजे के रोग-मुक्त होने से बहुत ही प्रभावित हुए और
उन्होंने शम्भू जी को जो पत्र भेजा उसमें लिखा कि माली ने तो प्राकृ-
तिक चिकित्सा से ही नया जीवन पाया है, हम तो निराश हो गये थे ।
'टब वाले बाबा'—डाक्टर किशनलाल जी—ने इसे बचाया है । हम
उनके बहुत ही कृतज्ञ हैं । प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति कितनी उत्तम है ।
तुम भी इसका अनुभव प्राप्त करो ।

शम्भू जी का निर्णय—शम्भू जी इस समय विनय- फार्मेसी में
काम कर रहे थे । एक ओर सम्पतराम जी वैद्य ने इन्हें अलवर की

ास कमेटी के कार्यालय में काम करने के लिए बुलाया था और इस
ान्ध में ये अलवर में श्री मास्टर भोलानाथ जी से मिल चुके थे,
र वहां नियुक्ति की आशा हो गयी थी। दूसरी ओर इनके भाई का
ााव तथा आग्रह प्राकृतिक चिकित्सा करने के लिए था। शम्भू जी
अपने निर्वाह के लिए कुछ आय की आवश्यकता थी। इन्होंने भाई
लिखा कि वर्तमान स्थिति में बिना आय के काम में लगना तो नहीं
सकता। यदि निर्वाह की व्यवस्था हो जाय तो मैं प्राकृतिक चिकित्सा
कार्य को सहर्ष स्वीकार कर लूं। इस बीच में श्री दूगड़ की सहायता
२ अक्टूबर १९५० को गांधीनगर (जयपुर) में प्राकृतिक चिकित्सालय
थापित करने और उसके डाक्टर किशनलाल जी द्वारा संचालित
ाने का विचार हुआ, जिसके सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।
स संस्था में एक सहायक कार्यकर्त्ता की आवश्यकता थी ही, उस पद
के लिए शम्भू जी को नियुक्ति हो जाने से उनका एवं संस्था का दोनों
ा हित हुआ।

वैद्य जी प्राकृतिक चिकित्सालय में—शम्भू जी ने बहुत वर्षों
ाक वैद्य का जीवन विताया था। आयुर्वेदिक चिकित्सा पद्धति के
कितने ही आदेश ऐसे हैं, जो सभी प्रकार के चिकित्सकों के लिए उप-
योगी हैं। वैद्यों के लिए उसमें सेवा और त्याग का आदर्श रखा गया
है। उसमें मनुष्य की दिनचर्या के लिए अच्छा पथ-प्रदर्शन किया गया
है, भोजन को ही औषधि वता कर आदमियों को औषधि सेवन से
यथा-सम्भव विरक्त किया है। तथापि आधुनिक काल में बहुत से वैद्य
कहे और माने जाने वाले व्यक्तियों ने औषधियों को व्यापार की अर्थात्
नफा कमाने की और धन पैदा करने की वस्तु वना रखा है! ऐसी दशा

में वैद्यक सर्व साधारण जनता के लिए यथेष्ट उपयोगी नहीं र
कुछ दशाओं में तो उसके द्वारा लोगों के अहित ही अधिक हो
संभावना रहती है। इस प्रकार वैद्यक के गहरे संस्कार पाये हुए
के लिए प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धान्त अपनाना काफी कठिन है
शम्भू जी ने प्राकृतिक चिकित्सक किशनलाल जी के पास रह कर
इस चिकित्सा सम्बन्धी साहित्य का अध्ययन और मनन करके
कठिन कार्य करने में अच्छी सफलता पायी। कई बार जब डा
किशनलाल जी चिकित्सालय से बाहर गये हुए रहे, नये रोगियों
चिकित्सा प्रारम्भ करने का भार शम्भू जी पर ही आता रहा।
रोगों पर उनका निर्णय ठीक ही साबित हुआ।

चिकित्सालय जैसी संस्थाओं को शैशव अवस्था में कैसी-कै
कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है,—खास कर जब आर्थिक साध
और कार्यकर्त्ताओं की कमी हो—यह जानकारों से छिपा नहीं है। ऐ
समय संस्था को चलाने में बहुत ही धैर्य, परिश्रम और त्याग चाहिए
रोगियों को सान्त्वना देने और उनका मन रखने में चिकित्सक की कई
परीक्षा होती है। उसमें सेवा-भाव तो बहुत ऊंचे दर्जे का होना ही
चाहिए। शम्भू जी ने इन गुणों का प्रशंसनीय परिचय दिया। बात
व्यवहार में उनकी मुस्कराहट और सेवा-मनोवृत्ति से आदमी प्रभावित
होता है, और उनके प्रति प्रेम और श्रद्धा रखने लगता है। चिकित्सा
संस्थाओं में ऐसे ही कार्यकर्ता होने चाहिए।

प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी दृष्टिकोण—प्राकृतिक चिकित्सा
में आने पर शम्भू जी का विश्वास इस चिकित्सा पद्धति के सम्बन्ध में

धेकाधिक दृढ़ होता गया। नाड़ी परीक्षा आदि का महत्व जानते हुए र समय-समय पर उसका उपयोग करते हुए भी चिकित्सा सम्बन्धी का दृष्टिकोण बदल गया है। उनका कथन है कि प्राकृतिक चिकित्सा द्धति में रोगी की इच्छा का विचार करके उसके अनुकूल उपचार किया ता है। बहुधा ऐसा होता है कि रोगी पानी मांग रहा है, और प्यास मारे छटपटा रहा है, पर चिकित्सक उसे पानी एक दो घूंट बड़ी जूसी से देते हैं और अनेक बार तो बिल्कुल ही नहीं देते, वे रोगी । इलायची, मिस्री, आलू बुखारा आदि मुंह में रख कर संतोष करने । कहते हैं। पर प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति में रोगी को पानी के लिए रसाया नहीं जाता, उसे यथेष्ट पानी पीने दिया जाता है। यदि रोगी ो सर्दी लगती है तो गर्मी दी जाती है, और अगर उसे गर्मी मालूम ोती है तो ठंडक का उपचार किया जाता है।

यह चिकित्सा पद्धति वास्तव में जीवन पद्धति है। यह हमें प्रकृति े संकेत समझने का आदेश करती है। यदि हम इसे दैनिक जीवन में प्रपना लें और इसके अनुसार अपना जीवन-क्रम बना लें और खान ान ठीक रखें तो हमें बहुत सुख मिले। आवश्यकतानुसार उपवास करके हम अपने शरीर को स्वयं शुद्ध कर सकते हैं। प्रायः हम लोग सर्दी, गर्मी से बहुत डरते हैं, हवा या वर्षा से बहुत बचते हैं, अमृतमयी धूप का उपयोग ही नहीं करना चाहते। आदमी थोड़ा अभ्यास करे तो वह इन चीजों को सहन करने लगे और इनके सेवन से, बिना कुछ खर्च किये ही बहुत लाभ उठाए।

विशेष वक्तव्य, हमें प्रकृति से सहयोग करना चाहिये—
प्रकृति स्वयं हमारे शरीरको ठीक रखने की व्यवस्था करती है। जब

हमारा उससे सहयोग होता है तब तक व्यवस्था ठीक चर
हमारे द्वारा गल्ती होने पर प्रकृति हमें चेतावनी देती है।
उपेक्षा करने पर प्रकृति हमें प्रायश्चित करने का अवसर देकर हं
रास्ते का अवलोकन कराती है। परन्तु जब हम उससे असहयोग
हैं और उसके आदेशों के विपरीत व्यवहार करते हैं तो हमा
की व्यवस्था बिगड़ जाती है। उदाहरण के लिए जुकाम ह
स्वभावतः हमारी भोजन में अरुचि हो जाती है। यदि हमने इस
की अवहेलना की, और भोजन कर ही लिया तो सफाई करने
प्रकृति का कार्य-भार बढ़ जाता है। पहले उसे हमारे शरीर से न
द्वारा थोड़ा सा ही मल निकालना था, अब उसे बहुत अधिक
निकालने का काम करना हो जायगा। इसमें उसे कई गुनी शक्ति
करनी होगी, और सम्भव है वह नाक के अतिरिक्त दूसरे मार्गों से
सफाई करने लगे, इसके लिए उसमें यथेष्ट क्षमता न हो। यदि वह
फल रही तो उसका दुष्परिणाम भयंकर रोग के रूप में हमें भोगना पड़े

अस्तु, हमें प्रकृति के कार्यों में सहयोगी होना चाहिए, न कि उ
मार्ग में रोड़ा बनना और बाधा उपस्थित करना। हम प्रकृति-
पंच महाभूतों का समुचित सेवन करें और प्रकृति से दूर या पृ
होने की भावना न रखें।

पूर्णमय के पूर्ण पुत्र हैं कहां अपूर्णता ?
पंच तत्व हैं सेवक मेरे, मेरा राज्य अथाह है ॥

द्वितीय खंड

श्रद्धांजलि-सुमन

[१]

ऐसी धन्य मृत्यु

स्व० डा० किशनलालजी

—श्री गोकुल भाई भट्ट, जयपुर

राजस्थान में जयपुर प्राकृतिक चिकित्सालय के प्रथम चिकित्सक डा० किशनलालजी अपनी सेवा-भावना तथा प्राकृतिक चिकित्सा की लगन के कारण हम लोगों के सुपरिचित थे। जयपुर में आने पर मालूम हुआ कि वे हमें छोड़ गये। स्वर्गस्थ के परम प्रिय मित्र श्री रामेश्वरजी अग्रवाल सुना रहे थे। उनकी मृत्यु कहानी :

"करीब तीन दिन पहले उन्होंने मृत्यु की बात बता दी थी— "बेहोशी में भी मुझे कोई दवा मत देना। प्रकृति अपने आप अपना धर्म साधेगी। इसलिये हे मेरे बेटे! और कोई गड़बड़ मत करना; रोने धोने की बात मत करना। शरीर छूटने वाला है। आज नहीं तो कल जाने ही वाला है। इसलिये अफसोस मत करना, दुख नहीं मानना......" वे प्राकृतिक उपचारक थे, आखिर तक अपना व्रत निभाया। गंगाजल पीने लगे थे और मृत्यु के समय के दो घण्टे पहले उन्होंने कह दिया था-"अपना मृत्यु समय"। वे ठोस काम करने वाले अपनी विद्या के धनी थे। ऐसी मृत्यु !! ऐसे श्रद्धालु, टेकीले मर्द, कौन किसे आश्वासन दे।

(ग्रामराज, २१ अप्रैल १९६४ से साभार)

[२]

सुखद मरण

श्री बलवंतसिंह, दुर्गापुरा (जयपुर)

मनुष्य चाहे कितनी ही उम्र का हो जाय, चाहे कितना भी क भोगता हो उसकी सब इंद्रियां शिथिल हो गई हों, तो भी जिस प्रक पानी में डूबने वाला जान बचाने के लिए अन्त तक हाथ पैर पट कर बचने की कोशिश करता है, उसी प्रकार मृत्यु के पंजे से छूटकने लिए मनुष्य ही नहीं प्राणी-मात्र छटपटाता है और अपने सारे प्रयत की इति तक पहुंचता है। लेकिन आखिर मरना ही पड़ता है, तो पी रोते-रोते मरता है और उसके रहने वाले सम्बन्धियों को भी रुलाता है इस के दो ही कारण प्रबल हैं एक तो 'जिजीविषाम' जीने की इच्छा और दूसरा मृत्यु का भय। हम दूसरे की मृत्यु पर दुखी होते हैं, उस भी हमारी खुद की जीने की इच्छा और मृत्यु ही प्रबल होती है।

मनुष्य किसी भी अवस्था मे इस संस्था से मुक्त होकर महाया पर जाना कम ही पसन्द करता है, उसके संबंधी भी उसे तीर्थयात्री तरह खुशी से विदा नहीं करते हैं। जिस प्रकार फल के पक जाने उसे डाल का सहारा छोड़ना ही पड़ता है या माली उसे डाली से अल कर लेता है, नहीं तो वह सड़ने लगेगा। पकने पर उसको डाली चिपके रहने देना उसको सड़ाना है, जिसे चतुर माली कभी भी बर्दा नहीं कर सकता है।

यही हाल प्रकृति देवी का भी है। जो प्रकृति देवी के नियमों भंग नहीं करता है या कमसे कम करता है, प्रकृति देवी भी उसके थ वैसा ही प्रेम करती है, जैसे माता पुत्र के साथ। मां जब देखती कि अब बच्चे का खाना पीना खेलना कूदना सब पूरा हो गया है, । उसे आराम से अपनी गोद में या नरम बिछौने पर प्रेम के साथ ला देती है और जब उसकी आंख मिच जाती है, बाहरी दुनियां से बेल्कुल बेखबर हो जाता है याने गहरी नींद में डूब जाता है तो मां ो परम संतोष मिलता है।

आसपास के वातावरण को भी वह शान्त करने का पूरा प्रबन्ध करती है, कहीं मेरे बच्चे की कच्ची नींद न टूट जाय। सचमुच ही इसमें मां का जितना प्यार भरा है, इसे मां के सिवाय दूसरा कौन अनुभव कर सकता है। तो प्रकृति माता या मृत्यु देवता को भी हमें गहरी और कभी न खुलने वाली नींद में सुला कर कितना आनन्द होता होगा।

सचमुच ही श्रद्धेय डा० किशनलाल जी प्राकृतिक चिकित्सा के डाक्टर नहीं, भक्त थे। डाक्टर तो बहुत मिले हैं लेकिन भक्त बिरले ही माई के लाल मिलते हैं। उनका मरण प्रेरणादायक बन गया है। किशनलाल जी रोगों में पड़ कर प्राकृतिक चिकित्सा के उपासक बने और जयपुर का प्राकृतिक चिकित्सालय प्राकृतिक ढंग से ही आरम्भ हुआ। मुझे खुशी है कि उसका मूल निमित्त मात्र मैं हूँ। ऐसी बात है कि मैं राजस्थान में गो सेवा के काम से आया। तो गांधी नगर जयपुर में ठहरा था। वहीं पर गो सेवा संघ का आफिस था। मालूम नहीं किस तरह सेठ श्री सोहनलाल जी दूगड़ को मेरे आने का पता चला उनसे

मेरी पुरानी जान पहिचान भी नहीं थी। मुझे अभी तक पता न
कि उनको मेरे बारे में क्या जानकारी मिली थी जिससे वे मुझसे
गांधीनगर आए थे। उस समय मैं वहां हाजिर नहीं था। दैवयो
श्री रामेश्वरलाल जी अग्रवाल वहां थे। उस समय सोहनलाल ज
हाथ में कई माह से साइटिका का दर्द था। कई बड़े बड़े डाक्टरों
लम्बी चिकित्सा से भी वह गया नहीं।

उन्होंने सहज भाव से रामेश्वर जी से कहा कि क्या आपके
कोई ऐसा प्राकृतिक चिकित्सक है जो प्राकृतिक चिकित्सा से मेरा
अच्छा कर सके। रामेश्वर जी ने कहा कि है तो सही लेकिन आप
श्रद्धा उन पर बैठेगी या नहीं इसमें शक है। सोहनलाल जी ने
से पैसे निकाले और कहा कि लो किसी को अभी भेजो और वे ज
भी हों उनको बुलवा दो मैं उनका ही इलाज कराऊंगा। अग्रवाल
ने आदमी भेजकर डा० किशनलाल जी को बुलाया।

कई अड़चनों व राय विभिन्नता के बीच सोहनलाल जी
इलाज होने पर उनका हाथ ठीक हो गया। तब उनके मन में आया कि
यहाँ पर एक प्राकृतिक चिकित्सालय खुलना चाहिए। उसके खर्च
लिए पाँच हजार तक का शुभ संकल्प किया तथा उन्हें वहीं रख क
प्राकृतिक चिकित्सालय शुरू करने का आग्रह किया।

भक्त किशनलालजी ने घास-फूस की झोंपड़ी बना कर वहाँ पर
अपना कार्य आरम्भ कर दिया। प्राकृतिक चिकित्सालय का आश्रम वहीं
पर बन गया, उनकी प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति अनन्त श्रद्धा और रोगियों
के प्रति भातृत्व अद्‌भुत सेवा-भाव और अनेक पुराने रोगियों को रोग-मुक्त

रने में उन्होंने अद्भुत सफलता प्राप्त की। स्व० भगवानदासजी केला था जाजूजी जैसे लोगों ने भी उनकी सेवाओं का लाभ उठाया और उनकी सेवाओं की मुक्तकंठ से सराहना की।

जिस प्रकार से हरेक संस्था में अनेक विघ्न बाधायें आया करती हैं, उसी प्रकार से इसमें भी आईं और जैसे तैसे करके यह चिकित्सालय स्थिर हो गया, बाद में मकान के लिए सोहनलालजी ने २५ हजार का दान दिया। सरकार से भी मदद मिली और मकान भी बन गए। डा० सुखरामदासजी आ गए और आजकल उनकी निगरानी में यह चिकित्सालय चल रहा है।

भक्त किशनलालजी बिना किसी साधन के सुबह घूमते समय एक रेत के टीले पर जाकर बैठ जाते और उनके पुराने नए परिचित लोग उनके पास आकर उनसे सलाह ले जाते। किसी को वहीं ठंडी रेत में नंगे बदन दबा देते, किसी को सूर्य स्नान कराते, किसी को टब बाथ या मिट्टी की पट्टी रखने की सलाह देते खान-पान की विधि बताते और सचमुच ही प्रकृति माता की गोद में बैठकर 'क्षिति जल पावक गगन समीरा, पंच तत्व यह रचित शरीरा' के सिद्धान्त के अनुसार इन पाँचों तत्वों की साक्षी में बैठकर इनके ही गुणगान और प्रकृति देवी की भक्ति करते और खुद उसका रसपान करते।

सुबह की पवित्र वेला में प्रकृति देवी की उपासना करने निकलने वालों को भी रसपान कराते। उनकी उम्र ७७ साल की हो चुकी थी। शरीर क्षीण हो चुका था लेकिन किसी प्रकार का रोग नहीं था। सचमुच ही फल पक चुका था और डाल से अलग होने का समय नजदीक आ

गया था। श्री अग्रवालजी गो सेवा संघ की तरफ से जोधपुर में
के काम में गए थे। मुझे बुलाने का भी उनका ट्रंक काल आया
पुछवाया कि भक्त किशनलालजी की तबीयत के समाचार लेते आन

मैंने पता लगाया तो खबर मिली कि ठीक है। मैं तारीख १
जोधपुर चला गया। हम वहाँ के देहातों की परिस्थिति का निरी
करने व अकाल सेवा के केन्द्रों का काम देखने चले गए। जब १३
लौटे तो अग्रवालजी ने जयपुर फोन से उनकी तबीयत के समाचार
तो चलने की तैयारी के समाचार मिलने से हम उनके दर्शन की अ
लाषा से जोधपुर से ११। बजे जयपुर के लिए जीप से निकल पड़े।

जमीन और आकाश गर्मी से धधक रहे थे लेकिन हमें तो उन
दर्शन की अभिलाषा खींचे ला रही थी कि अगर वे होश में हुए औ
उनको वह समाचार मिल गया कि हम आ रहे हैं तो हमारे पहुंचने त
शरीर नहीं छोड़ेंगे। लेकिन हमारे समाचार उनको मिल ही नहीं पा
थे, उसके पहले ही चल दिए थे। अजमेर से फोन करके पूछा तो पत
चला कि विदा हो गए। बीच में हमारी जीप ने भी थोड़ा धोखा दिय
लेकिन हमने पहुंचने की पूरी कोशिश की। इसी से संतोष माना।

जयपुर पहुंचने पर उनके ज्येष्ठ पुत्र ने सब वृतान्त सुनाया तो
खुशी से मेरा हृदय भर आया। जिस सुखद मरण की मैं कल्पना करता
रहता हूँ उसका प्रत्यक्ष वृतान्त सुनकर मेरे मुँह से सहज ही निकल पड़ा,
इसीका नाम "सुखद-मरण" है। तुम लोग धन्य हो, जो ऐसे पिता के
पुत्र होने का सौभाग्य मिला है।

उनके पुत्र ने सुनाया कि पिताजी की तबीयत बिल्कुल ठीक चल थी। कल सुबह उन्होंने हम सबको जमा होने के लिए कहा। जब जमा हो गए तो बोले-"देखो अब मुझे जाने का आभास या आदेश : गया है। अब मैं तुमको जो भी कहता हूँ-अगर तुम मेरे पुत्र हो तो कहने को मेरा आर्डर मानकर पालन करना है। उसमें मीनमेख निकालना है। कुछ भी परिवर्तन करने का मन में भी विचार नहीं ाा है।

अब मैं जा रहा हूँ। राम में तल्लीन हो रहा हूँ। इसमें बाधा ं डालना। अब मैं सिवाय गंगाजल के कुछ भी न लूँगा। क्योंकि र तुम लोग मुझे फलों का रस आदि देने की कोशिश करोगे तो से मुझे पोषण मिलेगा और मेरा प्राण शरीर में ही लगा रहेगा जिसे नहीं चाहता हूँ। मेरे आस-पास बात भी नहीं करना।

मेरे मरने पर किसी प्रकार का रोना-धोना नहीं करना। मुझे ज जो शान्ति का अनुभव हो रहा है, ऐसा जीवन में कभी नहीं हुआ । मैं साक्षात भगवान को अपनी आँखों के सामने देख रहा हूँ। जिस त्म संतोष और आनन्द,का मैं अनुभव कर रहा हूँ, उसका वर्णन नहीं : सकता हूँ। बस मुझे रामनाम में डूबने देना!" ऐसा कहकर चुप हो ए। उनकी आँख की ज्योति कम थी लेकिन कल तो सबको स्पष्ट पह-ानने लगे थे। जब बोलना बन्द हो गया तो मैं मोहवश डाक्टर के स गया और उनसे कहा कि आप पिताजी के विषय में कुछ परिवर्तन र सको, तो उनको फल का रस लेने के लिए राजी करने की कोशिश रो। डाक्टर साहब आए तो उन्हें देखकर पिताजी बोले-अच्छा हुआ,

तुम आ गए। अब मुझे कुछ भी देने की बात मन में भी नहीं सोच अब जल के सिवाय मुझे कुछ भी नहीं लेना है। मैं बे नहीं हूँ लेकिन किसी से बात करना नहीं चाहता हूँ। मैं बहुत ही हूँ। बस रामनाम में समा जाना चाहता हूँ इसलिए अब कोई मेरे श को भी हाथ नहीं लगावें। पानी भी चम्मच से ऊपर से डाला ज जिससे मेरे शरीर को हाथ का स्पर्श न हो।" इतना कहकर वे मौन गए। डाक्टर ने कहा—भाई यहाँ मेरा बस नहीं चलेगा। हम भी लाच हो गए और उनको गंगाजल देना चालू रखा। यह सब सुनकर मु गीता का यह वचन याद आया :

'अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनोः गतव्ययः'

जो पुरुष आकांक्षा से रहित तथा बाहर भीतर से शुद्ध औ चतुर है अर्थात जिस काम के लिए वह आया था, उसको पूरा कर चु है और जो सब दुखों से मुक्त है, ऐसा भक्त मुझे परम प्यारा है। शुचित की पराकाष्ठा पर पहुंचने पर किसी का भी स्पर्श बर्दाश्त नहीं होता है।

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के अनुभव का सार भी यही है कि जब कोई कामना से पैरों का स्पर्श करता तो उनको बिजली का सा धक्का लगता और चिल्ला कर रोने लगते। यह परम शुचिता की निशानी है। किन्हीं लोगों को बात करते समय हाथ लगाने की आदत होती है, एस अति प्रेम के आवेग से ही करते हैं। बहुत से लोगों को पसन्द भी है लेकिन अपने अनुभव की बात कहता हूँ जब कोई बात करते समय मेरे को हाथ लगाता है तो असभ्यता और गंदापन महसूस होता है चुप रहता हूँ, लेकिन दुःख होता है।

प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में जिन लोगों को जानता हूँ, उनमें
क किशनलालजी और डा० भागवत की पंक्ति में खड़ा रह सके—ऐसा
ई तीसरा नजर नहीं आता है। भीमावरम के डा० राजू का नाम
ना था, लेकिन उनको देखा नहीं था। आरम्भ में सेवाग्राम में देखने
ी धुंधली सी याद भी आती है, लेकिन उनको सेवा करते आँख से
हीं देखा था।

भक्त किशनलालजी की प्राकृतिक चिकित्सा पर ऐसी अटल श्रद्धा
ी कि किसी भी हालत में रोगी को दवा देने के लिए उनका मन नहीं
ुकता था। उनके उपचार का भी ऐसा ही अनुभव हुआ है कि उनकी
अटल श्रद्धा सफल ही होती थी। सचमुच में तो प्राकृतिक चिकित्सा
ाहीं, प्राकृतिक जीवन है, जो वे जी रहे थे और अन्त की घड़ी तक
उन्होंने उसका पल्ला नहीं छोड़ा और उसी में स्वाभाविक रूप से समा
ाए। उनकी निष्ठा, उनकी कर्मठता, उनका सेवाभाव, उनका अटल
नेश्चय, प्रकृति देवी और रामनाम पर अटूट श्रद्धा के प्रताप से ही
उनका मरण सुखद हुआ।

"दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धरि दीनि चदरिया।"

सचमुच उन्होंने भी यही किया। इसी का नाम सुखद मरण है
और यही जीवन की सच्ची कमाई है। अगर इतना मिले तो और क्या
चाहिए। प्राकृतिक चिकित्सा या प्राकृतिक जीवन के क्षेत्र में किशनलाल
जी का जीवन और सुखद मरण अद्‌भुत प्रेरणाप्रद सिद्ध होगा—ऐसी
आशा है और विश्वास भी है। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि भी
होगी।

---

[३]

निष्ठा के पक्के

—श्री सिद्धराज ढड्ढा, व

वे अपनी निष्ठा के बहुत पक्के थे—ऐसी छाप मुझ पर एक-दो मर्तबा उनकी चिकित्सा से भी मैंने लाभ उठाया।

जिस चीज का मनुष्य पुतला है, उसी से इलाज ढूंढ़े। पुतला पृथ्वी, पानी, आकाश, तेज और वायु का बना है, इन पांच तत्त्वों से जो मिल सके सो ले। शुद्ध शरीर पैदा करने का प्रयत्न सब करें और उसी प्रयत्न में कुदरती इलाज अपने आप मर्यादित हो जाता है।

—गांधी जी

लोग हर गांव में एक दवाखाना होने की मांग करते हैं, लेकिन यह ईश्वर की कृपा ही है कि अब तक ऐसा नहीं हुआ। दवाखाने खुल जाने पर पैसे बाहर जायेंगे और रोग दस गुने बढ़ जायेंगे। डाक्टर जिस घर में प्रवेश कर जाता है, उसका पिंड फिर वह नहीं छोड़ता।

—विनोबा

मरने में शोक व जन्मने में हर्ष क्यों?

—श्री महावीर प्रसाद पोद्दार, जसीडीह

श्री किशनलालजी के स्वर्गवास के समाचार मुझे उनके लड़के पत्र से प्राप्त हुए थे। जैसी अच्छी मृत्यु उनकी हुई है, उसमें दुःख ा क्या बात है? प्राकृतिक चिकित्सा में जैसे हम दवाइयों का त्याग रते हैं वैसे ही मरने में शोक और जन्मने में हर्ष मनाने की बात ो नहीं होनी चाहिए। जीवन-मरण बिल्कुल प्राकृतिक कारबार है। ारने से डर, मरने में दुःख यह सब संसार में आसक्ति के कारण होता ै। धरा (संसार) पर धरा ही क्या है जिसके लिए रहने की इच्छा करें। र मालिक रखना ही चाहे तो उसमें भी उज्र क्या?

जीता रखे तू हमको या तन से सिर उतारे।
अब तो फकीर आशिक कहते हैं यों पुकारे।
राजी हैं हम उसी में जिसमें तेरी रज़ा है।
यों यों भी वाह वाह है और वों भी वाह वाह है।

डा. किशनलाल जी

(श्री जवाहिर लाल जैन, जयपुर)

ठिगना कद, गेहुंआ वर्ण, चेहरे और हाथों पर सफेद दाग,
हुए सफेद बाल, शरीर पर सादे मटमैले और थोड़े से कपड़े—डा० किश
लाल जी का व्यक्तित्व आकर्षक नहीं था और पहली बार मिलने व
को भरोसा नहीं होता था कि वे कोई डाक्टर हैं। आधुनिक अर्थ
वे डाक्टर थे भी नहीं। वे किसी मेडिकल कालेज के स्नातक नहीं
कोट-पैण्ट नहीं पहनते थे, स्टेथस्कोप उनके गले या जेब में नह
..टकती थी, अंग्रेजी उन्हें आती नहीं थी, डींग हांकना उन्हें पसं
नहीं था। लेकिन फिर भी वे डाक्टर थे। वे बरसों अपने रोगों क
इलाज स्वयं करके रोग के मूल कारण तक पहुंचे थे और उस कारण का
निवारण किस तरह हो सकता है—यह उन्होंने पहले अपने ऊपर करके
देखा था, फिर सैकड़ों हजारों अन्य रोगियों पर किया था और वे किसी
भी रोगी पर वह प्रयोग करने को पूरे विश्वास से सदा तैयार थे। उन्होंने
अपने अनुभव से जान लिया था कि शरीर में विजातीय द्रव्य का एक-
त्रित होना ही सब रोगों का मूल कारण है। प्रकृति स्वयं रोग का निवारण
करने में सदा प्रयत्नशील रहती है, हमारा काम केवल प्रकृति को मदद
करना है और प्रकृति द्वारा प्रदत्त पंचमहाभूतों की सहायता से न केवल
सब रोगों का निवारण हो सकता है, बल्कि पूर्णतः नीरोग शरीर भी इन्हीं
की सहायता से रह सकता है। वे प्राकृतिक चिकित्सक थे, प्राकृतिक

जीवन के समर्थक थे, स्वयं उस जीवन को जीते थे और दूसरों को उक्त जीवन जीना सिखाते थे। जो रोग होते, उन्हें इसी के जरिये दूर करते थे और हरेक को इन्हें दूर करना सिखाते थे।

× × ×

करीब दस साल पहले किशनलाल जी जयपुर आये थे। तभी से उनका मुझसे परिचय था और हम दोनों की एक दूसरे के प्रति सम्मान की भावना थी। बहुत लोग उनके इलाज और रहन-सहन के प्रति आकर्षित नहीं थे और कहते थे कि उनकी पद्धति वैज्ञानिक और आधुनिक नहीं है। मुझे लगता है कि धर्म की भांति विज्ञान भी इस युग में अंधश्रद्धा, संकुचितता, पेशेवरी और ईर्ष्या-द्वेष का शिकार हो गया है और खासकर आधुनिक पश्चिमी चिकित्सा विज्ञान और पद्धति। आज के डाक्टरों में भी प्राय पुराने महंतों की तरह सर्वज्ञता की सी भूमिका पाई जाती है। ऐसी परिस्थिति में किशनलाल जी को कोई पूछता और टिकने देता, यह असम्भव नहीं तो बहुत कठिन अवश्य था। पर किशनलालजी ने टूटे झोंपड़ों से और एक-दो रोगियों से काम शुरू किया और उस काम को गांधीनगर के वर्तमान प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थिति तक पहुंचा दिया। यद्यपि अंतिम वर्षों में उन्हें भी इसी 'वैज्ञानिकता' का शिकार बनना पड़ा, फिर भी उस व्यक्ति में प्राकृतिक चिकित्सा की निष्ठा और लगन नहीं घटी और वे जीवन के अंतिम क्षण तक इसी चिंतन और प्रयोग में लगे रहे तथा बराबर इस दिशा में प्रयत्नशील रहे। मुझे इस बात का खेद है कि सरकारी जमीन, पक्की इमारतें, ज्यादा रोगी, अच्छे साज-सामान और सरकारी सहायता के मोह के कारण हम लोग भी शायद इसी तथाकथित वैज्ञानिकता के प्रवाह में बह गये और

किशनलाल जी को अपने तथाकथित 'अवैज्ञानिक' जीवन-प्रयोगों मौका आखिरी वर्षों में नहीं मिल पाया। हो सकता है वे प्रयोग 'अ वैज्ञानिक' होते और भावी वैज्ञानिकता का मार्ग-दर्शन करते। यह हो सकता है कि तंत्र के साथ यह सब बैठता नहीं है। इस लिए 'अ वैज्ञानिक' लोगों के तप से ही दुनियां आगे बढ़ती है, उनकी सुविधा और आराम से नहीं।

× × ×

किशनलाल जी में प्राकृतिक चिकित्सा के मूल सिद्धान्तों के प्रति गजब की निष्ठा थी। वे कभी इस बात को मानने को तैयार नहीं थे कि कोई बीमारी ऐसी भी हो सकती है जो प्राकृतिक जीवन और प्राकृतिक उपचार से दूर नहीं हो सकती। वे साथ ही यह भी मानते थे कि मृत्यु की बीमारी का कोई इलाज नहीं है, इसलिए सभी बीमारियों का एक ही इलाज उनके पास था—शरीर में से विजातीय द्रव्य निकालना और प्रकृति को रोग से लड़ने में मदद देना। इसीलिए वे किसी भी बीमार को किसी भी स्थिति में प्राकृतिक चिकित्सालय में भरती करने से डरते और घबराते नहीं थे।

प्रकृति के अनुकूल जीवन और ईश्वर पर भरोसा—ये उनके दो नुस्खे थे जो उनकी दृष्टि में रामबाण थे। वे यह भी जानते थे कि सामान्यतः लोगों को इन दोनों पर भरोसा नहीं है, इसलिए प्रायः वे ही लोग उनके पास आते थे जो एलोपैथी, आयुर्वेद आदि पद्धतियों से इलाज करवा कर थक जाते थे और सब जगह से उन्हें जवाब मिल जाता था।

जो भी कोई उनके पास जाता और उनके इलाज को अपनाने इनकार करता या जाना चाहता तो वे उसे सहर्ष जाने देते थे, क्योंकि जानते थे कि आज के बनावट के युग में प्राकृतिक चिकित्सा जैसी चिकित्सा पर दुनियांदार लोगों का भरोसा जमना कठिन है। रोगी ाये या न आये, रहे या चला जाय, वे अपने इलाज में जरा भी दवाई, जेक्शन आदि का प्रयोग करने को तैयार नहीं होते थे।

रोगी को दिलासा, समन्वय, या दुनियांदारी—किसी भी नाम ार उन्हें प्राकृतिक चिकित्सा और जीवन के सिद्धान्त से जौ भर भी हटना ह्य नहीं होता था। वे वड़े से वड़े और निकट से निकट व्यक्ति से भी वेधड़क यह कह देते थे—रास्ता तो जो मैं वतला रहा हूँ वही सही है। मैं जानता हूँ कि यह आपको रुचेगा नहीं। आपको जैसा उचित लगे करें। मैं तो कम पढ़ा-लिखा मामूली आदमी हूँ। आपको मेरी वात जब जंच जाय, तब आ जाइये। मेरे स्वयं के साथ ऐसे मौके कई वार आये।

× × ×

कमियाँ हर आदमी में होती है। 'वे ऐव जात अल्लाह की है'—गवान के अलावा और कोई सर्वगुण सम्पन्न नहीं हो सकता। किशन-लालजी की पढ़ाई-लिखाई बहुत मामूली थी, अंग्रेजी उन्हें बिल्कुल आती नहीं थी, आधुनिक शिष्टाचार, चिकनी चुपड़ी वातें उनसे वनती नहीं थी, रहन-सहन, टीप-टाप, पहनाव-दिखावा उनसे होता नहीं था। लोग उनसे 'इम्प्रेस' नहीं होते थे। वे अपने हिसाव-किताव में, वाजार के भाव-ताव में, दूसरों से ठगाये न जायं—इसमें वहुत चौकस थे—

संभवतः जरूरत से ज्यादा भी थे। लेकिन जो थे, जितने थे, वह
था, उसमें सच्चे थे।

दूसरी बात यह थी कि प्राकृतिक चिकित्सा और जीवन में
रामनाम में श्रद्धा होते हुए भी वे कभी अंध श्रद्धालु नहीं हुए। प्राकृ
चिकित्सा के उनके प्रयोग चलते ही रहते थे, इस दिशा में अन्य चि
त्सकों ने—देशी और विदेशी दोनों ने क्या सोचा है, क्या किया है
इसको जानने की, सोचने की उनकी बराबर कोशिश चलती रहती थी
जो कुछ वे जानते और करते थे, उसमें अहंकार की मात्रा लेश भर
नहीं होती थी, हाँ निष्ठा उनमें हमेशा भरपूर रही।

जब किशनलालजी हाल में बीमार हुए और उन्हें लगा
शायद अब शरीर न रहे तो उन्होंने अपने पुत्रों को बुलाकर तीन बा
कहीं :—

(१) मुझे अगर होश न रहे तो भी अन्तिम दम तक
किसी भी दवा का, किसी भी इंजेक्शन का स्पर्श तक मेरे शरीर से
होने देना।

(२) तुम्हें अगर मुझ पर, मेरे जीवन के प्रयोगों पर भरोसा
तो तुम कभी दवा के पास भी मत जाना, प्राकृतिक जीवन और प्राकृति
चिकित्सा पर ही निर्भर रहना।

(३) अगर तुम्हें मेरे लिए मेरे बाद कुछ दान-पुण्य करना
तो वह सब भी प्राकृतिक जीवन तथा प्राकृतिक चिकित्सा की उन्नति
ही किसी काम में लगाना।

श्रीकिशनलालजी की यह निष्ठा उन्हें अपने ऊपर किये गये बरसों प्रयोगों से प्राप्त हुई थी और अपने जीवन में सैकड़ों–हजारों लोगों किये गये प्रयासों से दृढ़ हुई थी। इसी ने उनके जीवन को बनाया र उनकी मृत्यु को संवारा। किशनलालजी प्राकृतिक चिकित्सा और कृतिक जीवन की निष्ठा को लेकर जिये और उसे लेकर ही मरे!

मुझे विश्वास है कि उनकी निष्ठा की यह चिनगारी बुझेगी हीं, बल्कि औरों को भी प्रेरणा देने वाली साबित होगी।

[६]
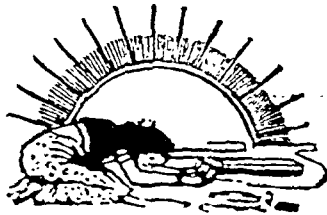
उनका एक अपना दर्शन था

—डा० सुखरामदास, प्राकृतिक चिकित्सालय, जय

डा० श्री किशनलालजी के निकट संपर्क में रहकर लगभग ७ व
तक काम करने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है। इस अर्से में उनके सा
रहते हुए कई प्रकार के अनुभव प्राप्त करने का सुअवसर मिला। कु
मिलाकर उनके व्यक्तित्व का चित्रण करें तो देखेंगे कि वे अपने ढं
के अनोखे और ठोस व्यक्ति थे। हृदय से सरल, व्यवहार में कुशल
और अपनी मान्यताओं में वे बड़े ही दृढ़ थे। कहना होगा वे प्राकृति
चिकित्सा क्षेत्र के एक महान् योद्धा थे। लोगों के साथ बातचीत के
दौरान में प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी जन-साधारण की आस्था जमाने
में वे सिद्ध वक्ता थे। चिकित्सक के रूप में भी उनकी यह एक बड़ी
कुशलता थी।

प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में उनका एक अपना दर्शन था।
उस दर्शन के विरुद्ध वे किसी को कभी कुछ बख्शना पसन्द नहीं करते
थे। उनका दर्शन यह था कि व्यक्ति अपनी तरफ से गल्तियाँ करके ही
स्वास्थ्य खोता है। प्राकृतिक चिकित्सा का उद्देश्य होना चाहिए उस
खोए हुए स्वास्थ्य की प्राप्ति इस रूप में की जाय कि जिससे की गई
गल्तियों का प्रायश्चित सही ढंग से हो सके। प्रायश्चित के माध्य

व्यक्ति के जीवन में किए गए दोषों का परिमार्जन और जीवन में
यम तथा विवेक संबंधी जागरूकता पनपती है। इस प्रकार की जाग-
कता पनपने से व्यक्ति जीवन संबंधी कई दोषों से बच सकता है और
षों से बचते रहने पर व्यक्ति के गुणों का और स्वास्थ्य का सहज
ी विकास होता है। उनकी दृढ़ मान्यता थी कि यदि प्राकृतिक चिकि-
त्सा में ऐसी कोई आरामतलबी तरीका अख्तियार कर लिया जाएगा कि
जिससे प्रायश्चित भावना में कमजोरी आ जाय तो जीवन में प्राकृ-
तिक चिकित्सा संबंधी निष्ठा पनप नहीं सकेगी। इसलिए वे जीवन
मोह को लेकर प्राकृतिक चिकित्सा में ऐसा कोई भी तरीका मान्य करना
नहीं चाहते थे जो प्राकृतिक चिकित्सा के प्रायश्चित वृत्ति की दृढ़ता में
किसी प्रकार की शिथिलता ले आए।

प्राकृतिक चिकित्सा के बारे में वास्तव में यह एक सही दर्शन
है। इस दर्शन के चरितार्थ कराने के पहलू में उनका मेरा कई जगह
मतभेद भी रहा है। परन्तु उनमें कई ऐसे विशिष्ट गुण थे जिन्होंने
उनके प्रति मुझे सदा ही आकृष्ट किया है।

जयपुर में बापूनगर स्थित प्राकृतिक चिकित्सालय डा० किशन-
लालजी की ही देन है। इस संस्था की नाजुक बाल्यकाल की स्थिति
में से संस्था को उबारने और टिकाए रखने के पीछे उन्हीं की तपश्चर्या
और सतत परिश्रम रहा है। आज वे शरीर रूप से नहीं रहे परन्तु उन्हीं
के स्मारक रूप उन्हीं द्वारा खड़ी की गई संस्था के रूप में वे आज
भी हमारे बीच हैं।

उनके काम को आगे बढ़ाने में उनके जीवन से मिलने वा
प्रेरणा आज भी हम सब के लिए पर्याप्त है। उनके प्रति श्रद्धा औ
प्रेम रखने वाले हम सब लोग उनके जीवन से प्रेरणा लेकर उनके अ
प्रिय प्राकृतिक चिकित्सा कार्य-क्रम को सुचारु रूप से आगे बढ़ाते रहें
प्रभु के प्रति इस प्रार्थना और कामना के साथ उस दिवंगत आत्मा
प्रति विनम्र श्रद्धांजलि समर्पित है।

[७]

उन्होंने जीना सिखाया

—श्री रघुवरदयाल गोयल, बीकानेर

मुझ पर तथा मेरे परिवार पर श्रद्धेय श्री किशनलालजी के बड़े उपकार हैं। उन्होंने हमें जीवन जीना सिखाया, एक जीवन दृष्टि दी। वैसे सब दृष्यमान पदार्थ नाशवान हैं, सबका अंत १ दिन होना ही है।

भगवान उनकी आत्मा को शांति प्रदान करें।

[८]

एक योग्य निसर्गोपचारक खो दिया

—श्री आनन्दीलाल गोयंदका, कल

डा० किशनलालजी की मृत्यु से हमने एक बहुत ही योग्य अनुभवी निसर्गोपचारक खो दिया।

मैंने लगभग १५ दिन ही जयपुर में उनसे इलाज कराया प इतने से अर्से के निकट संपर्क की स्नेह पूर्ण स्मृतियां सदा ताजी रहेंगी। मैंने स्वास्थ्य की दृष्टि से जो लाभ प्राप्त किया उसे कभी भुला सकता। ऐसे महामना के लिए क्या श्रद्धांजलि अर्पित करूँ?

अपने विश्वासों पर उनका पूरा अधिकार

—श्री सोहनलाल दुग्गड़,

श्री किशनलालजी की मृत्यु से सभी को दुःख होना स्वा
है। वे प्राकृतिक चिकित्सा के एक विशेषज्ञ थे। उनका अनुभ
विषय पर काफी था। अपने विश्वासों पर उनका पूरा अधिकार
पूरा भरोसा था। इसलिए वे बहुत करके सफल होते थे। उस रोज
रात ३ बजे मेरे हाथ में भयंकर दर्द था। डाक्टर हेलिग आए।
७४० तक दर्द कम हुआ ही नहीं। सौभाग्य से श्री रामेश्वरजी अ
आ गए। उन्होंने श्री किशनलालजी को बुलाया। उन्होंने उपचार
उससे तुरन्त ही ३-४ घण्टों में आधा आराम तो हो ही गया
४८ घण्टों में तो पूरा आराम हो गया। उसके पश्चात् आज तक
बीमारी फिर कभी नहीं हुई।

मैं अत्यंत आदरपूर्वक स्वर्गीय किशनलालजी की आत्मा के
श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। उस परम परमेश्वर से प्रार्थना है कि
परिपक्व और सुखद-मरण सभी को प्रदान करे।

मुझे प्राकृतिक जीवन की प्रेरणा मिली

—श्री बद्री स्वामी, मकराणा

आज से करीब १० वर्ष पहले की बात है। आज के बापूनगर तेक चिकित्सा केन्द्र पर प्राकृतिक जीवन प्रेमियों का एक शिविर था। उसमें सम्मिलित होने का मुझे भी सौभाग्य मिला था। य डा० किशनलालजी के दर्शन सर्व प्रथम वहां हुए। उस समय त्सालय की आज की इमारत के स्थान पर सिर्फ १, २ कच्चे छप्पर हीं उनका निवास, वही चिकित्सालय और वहीं था हमारा शिविर।

शिविर क्या था प्राकृतिक जीवन का एक प्रयोग था। मुख्य कार्य- थे श्रम सफाई सहचिन्तन व सह भोजन—इन सब कार्यों के कर्णा- थे डाक्टर श्री किशनलालजी। उनकी सादगी, श्रमनिष्ठा, प्राकृतिक से प्रकृति की गोद में रह कर जीवन जीने की प्रवृति और प्रयत्न मेरे चित्त पर जो प्रभाव हुआ वह मेरे जीवन में आज भी अमिट है।

उनसे बातचीत के दौरान में उन्होंने एक बार कहा कि प्रकृति नियमों को सतत समझना और अपने जीवन को उनके अनुसार ना ही प्राकृतिक चिकित्सा और चिकित्सक का मुख्य उद्देश्य है ? में जीवन की परम सिद्धि और परमेश्वर प्राप्ति है। मेरे लिये तिक जीवन जीने की प्रेरणा का यह वाक्य आधार बना तब से मैं उस ा में प्रयत्नशील हूँ। उसके बाद अनेकों बार डाक्टर साहिब से

मिलना हुआ और बातचीत हुई। मैंने सदैव उन में प्राकृतिक जीवन चिकित्सा के प्रति अटूट श्रद्धा पाई।

वे वास्तव में प्राकृतिक चिकित्सा के पीछे पागल थे। वे प्राकृति चिकित्सा के चिकित्सक नहीं, साधक थे। प्राकृतिक चिकित्सा में शिि न होते हुए भी सफल शिक्षक थे। विशेषज्ञ न होते हुए भी विवेकपू विचारक थे। वे प्राकृतिक जीवन पद्धति और चिकित्सा के अन्ि घड़ी तक पालक थे। उस प्राकृतिक चिकित्सा के महान प्रेमी का प्राण भी पूर्णतया प्राकृतिक ढंग से ही हुआ—यह थी उनके प्राकृतिक जी प्रेम की पराकाष्ठा। धन्य है ऐसे पुरुषों का जीवन जो प्राकृतिक जी जीने के लिये आये, जिये और गये।

चिकित्सा की साधारण विधि में रोगी बीमार पड़ने पर डाक्टर के पास दौड़ता है और वह दवा दे देता है, उससे शरीर में रोग के कारण प्रकट हुए असाधारण लक्षणों के मिट जाने पर डाक्टर का काम समाप्त हो जाता है। साथ ही बीमार और डाक्टर का सम्बन्ध, और उसके विषय में उसकी दिलचस्पी भी खत्म हो जाती है। दूसरी ओर प्राकृतिक चिकित्सा का उपचारक रोगी को, उसके रोग के लिए, कोई जड़ी बूटी नहीं देता, बल्कि अपने बीमार को रहन-सहन का वह तरीका सिखाता है कि जिससे वह अपने घर में रह कर अच्छा जीवन बिता सके और फिर कभी बीमार न पड़े। वह अपने रोगी के रोग-विशेष को मिटा कर ही बैठ नहीं रहता।

—गांधी जी

[११]

एक संस्मरण

(श्री धर्मचन्द जी सरावगी एम० एल० सी० कलकत्ता)

सत्व चिकित्सक स्वर्गीय श्री किशनलाल जी से मैं सबसे पहले यपुर में आज से प्रायः १४-१५ साल पहले मिला। वे ठिगने कद के बले पतले सीधे-सादे व्यक्ति थे। अपनी धुन के पक्के, बिना किसी ाडम्बर के अपनी बातों को बड़ी दृढ़ता के साथ कहते और समझाते।

आधुनिक वेश भूषा से दूर अपने अनुभव के आधार पर किये ये प्रयोगों को बताकर वे रोगी पर छाप जमा देते थे। कुछ लोग तो उनके ाधारण वेशभूषा और सरल ढंग के रहन सहन को पसन्द करते थे ौर उनकी एक विशेषता मानते थे। परन्तु कुछ लोग इसका विरोध रते और कहते-चिकित्सालय में तो टीम-टाम वाला शानदार चिकि- तक चाहिये, जो लोगों पर अपनी वेश भूषा, रंगढंग व्यक्तित्व आदि े प्रभाव डाल सके।

किशनलालजी ने बापूनगर, जयपुर के प्राकृतिक चिकित्सालय में ह कर अपने उपरोक्त गुणों से ही उसे काफी बढ़ाया। मैं जब-जब उन से बातचीत करता वे अपने अनुभवों को सुनाने लगते। उन्होंने ोगियों के रोग राजस्थान की सर्दियों के दिनों में खुले आकाश में नंगे बालू में गाड़कर ठीक किये। कितनों को केवल खरबूजे, मतीरे आदि खिलाकर ठीक किये। सन् १९६२ ई० में जब पिताजी अस्वस्थ हुए और मुझे भी जयपुर जाकर बापूनगर में रहना पड़ा तो कई बार उनसे

मिला। वे सुबह सूर्योदय के पहले टीबों पर चले जाते। उनके सा
उनके विचारों से सहमत दस बीस व्यक्ति भी एकत्रित होते। वहां स्व
कणों के समान सुन्दर, रेशम के समान मुलायम और बर्फ की तरह ठं
टीबों में कुल्हाड़ी से लोग टीबों को खोद-खोद कर सो जाते। किश
लालजी भी उस सुन्दर बालू में स्वयं कमर तक गड़ जाते और बालू
गड़ने के लाभों को बताते। इस तरह वहां बैठे-बैठे सूर्योदय का सुन्द
दृश्य देखते और जब थोड़ी धूप होती तो सबको अपने कपड़े झाड़कर घ
चलने के लिए कहते।

उनके जैसे निर्लोभी, लगन के पक्के व्यक्ति बहुत कम देखने में आते हैं। उनकी मृत्यु का समाचार जब मैंने सुना तो काफी दुःख हुआ। सोचा प्राकृतिक चिकित्सा जगत का एक कर्मठ सदस्य इस दुनिया से चला गया।

कुदरती इलाज के तरीके में बीमार की बीमारी को जड़ से मिटा देने के साथ उसके लिए एक ऐसी जीवन-पद्धति का आरम्भ होता है, जिसमें फिर उसके रोगी होने की गुंजाइश नहीं रहती। कुदरती इलाज तो जीवन की एक पद्धति है।

—गांधी जी

[१२]

एक भावपूर्ण श्रद्धांजलि

(श्री शंभूप्रसाद जी शर्मा, प्राकृतिक चिकित्सालय, जयपुर)

बाबाजी श्री किशनलालजी के साथ मैं प्राकृतिक चिकित्सालय में गभग ८ वर्ष रहा। वैसे उनका मेरा संबंध तो पिछले ३० वर्षों से रहा। इतने लंबे काल में मुझे उनके साथ जो अनुभव आए तथा जितनी ृतियां हैं उन्हें लिपिबद्ध करने बैठूं तो एक बड़ा ग्रंथ ही बन जाएगा जसकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

इतना अवश्य कह सकता हूँ कि प्राकृतिक चिकित्सा में उनकी नेष्ठा का शतांश भी यदि हम अपने जीवन में ग्रहण कर सकेंगे तो मारा जीवन धन्य हो जाएगा। उनके सम्पूर्ण जीवन दर्शन को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ। प्रभु से याचना करता हूँ कि उनके निकट संपर्क में रहे हुए हम लोगों को इतना बल दें कि हम उनके दर्शन को समझकर अपने जीवन में उतार सकें तथा प्राकृतिक चिकित्सा के व्यापक प्रचार व प्रसार संबंधी उनकी अंतिम तीव्र इच्छा को पूर्ण करने में अपना योग-दान कर सकें।

उनकी आत्मा के प्रति विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

[१३]

एक अनुभव

(श्री ऋषिराज नौटियाल, लखनऊ)

"आपको काफी खांसी और जुकाम है। आखें भी कुछ दिखाई पड़ती हैं। मालूम होता है शायद बुखार भी होगा"

"हां, इस बार जयपुर आते समय ट्रेन में ही मेरी तबीयत हो गई थी"।

"यहां एक प्राकृतिक चिकित्सक श्री किशनलालजी हैं, अगर तो मैं उनको बुला दूं"

"मेरा ख्याल है कि यह अच्छा रहेगा क्योंकि मुझे दो दिन बाद ही अगले स्थान के लिए प्रवास पर जाना होगा"

उपरोक्त बातें संस्था संघ के निरीक्षण के प्रथम दिन मेरी श्री अग्रवाल जी के मध्य हुई। मैं संस्था-संघ के निरीक्षण के बजाजनगर में ठहरा हुआ था।

संयोग की बात कि श्री किशनलाल जी मकान पर न मिल सके श्री अग्रवाल जी ने तब स्थानीय दूसरे एलोपेथिक डाक्टर की की किन्तु दुर्भाग्यवश वह भी नहीं मिल सके। यद्यपि मेरी तबीयत खराब हो गई थी, पर मैंने समझा एक-दो दिन में ठीक हो जाऊंगा किन्तु शाम के समय डा० किशनलाल जी आ गये और उन्होंने मेरे शरी की परीक्षा की। जांच पड़ताल के पश्चात् उन्होंने कहा-रोग तो आपका दो दिन में ही ठीक हो जायेगा यदि आप मेरे कथानानुसार चलें"।

"आप विश्वास कीजिए, जैसा आप कहेंगे वैसा ही करूंगा"। मुस्कराते हुए मैंने उत्तर दिया। साथ ही मैंने यह भी बताया कि गरमी अधिक होने के कारण रात गलती से मैं बाहर सो गया जिसके कारण मालूम पड़ता है कि और भी अधिक खांसी जुकाम हो गया है और इस समय मेरा सारा शरीर एकदम भारी और व्याकुल है।

"यदि आप मेरे कहने के अनुसार चलें तो मैं आपको कहूंगा कि आप कपड़े पहन कर नहीं वल्कि शरीर के सारे कपड़े निकालकर और केवल एक कच्छा पहनकर रात भर खुले आकाश के नीचे सोयें तो आप और भी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करेंगे।

एक क्षण मैं डाक्टर साहब के मुंह की ओर देखता रहा क्यों कि मैंने तो उन्हें बताया था कि बाहर सोने पर मेरा यह हाल हो गया है और वे मुझे नग्न होकर बाहर सोने के लिए प्रेरित कर रहे थे।

शायद डाक्टर साहब ने मेरा असमंजस समझ लिया और मेरी मूकता का उत्तर उन्होंने दिया-आप घबड़ाइये नहीं। प्राकृतिक चमत्कार पर विश्वास कीजिए और एक वार इसकी परीक्षा कर लीजिए।

डाक्टर साहब की बातों में शायद काफी अंशों में आत्म-विश्वास था कि मैं कह उठा "ठीक है"। उन्होंने यह भी वताया कि पूर्णरूप से तीन दिन का उपवास होगा और केवल जल के अतिरिक्त और कोई भी वस्तु नहीं लेंगे। मैंने हंसते हुए उत्तर दिया, "ठीक है मैं ऐसा ही करूंगा"।

रात आई, मैंने डाक्टर साहब के आदेश का अक्षरशः पालन करना आरम्भ कर दिया। एक कच्छा पहनकर और शरीर के अन्य सभी वस्त्र उतारकर मैं एक तख्त पर खुले आकाश के नीचे लेट गया।

लगभग १० बजे रात का समय होगा कि श्री रामेश्वरजी अग्र
द्वारा बुलाये गये दूसरे एलोपैथिक डाक्टर आ गये। उनको बुलाने
संदेश पहले ही उनके घर पहुंचाया गया था और उसके अनुसार ई
बेचारे १० बजे रात को आये।

उन्होंने बाहर लेटे हुए एक अन्य साथी से मेरा नाम लेकर
कि वे साहब कहां हैं। अपना नाम सुनकर मैं उठ बैठा और मैंने
दिया "आइए डाक्टर साहब"।

"क्या आप ही बीमार हैं"। आश्चर्य से उन्होंने मेरी वेश-
देखते हुए कहा।

"जी हां"। उनके मनकी भावना समझते हुए मैंने उत्तर दि
डा० साहब शायद सोच रहे थे कि एक बीमार आदमी जिसको ए
जुकाम और बुखार काफी है इस प्रकार निरवसन पड़ा लेटा है कैसे

मैंने उनको डा० किशनलालजी के उपचार की सारी कहानी
दी। सुनकर वे मुस्कराये। कहने लगे "डाक्टर साहब हैं तो तजु
किन्तु फिर भी कोई आवश्यकता पड़े तो सुबह बुलवा लीजिएग
मैंने अच्छा कहकर उन्हें विदा किया।

टेम्परेचर १०२ के आस-पास रहा होगा। लगभग १ बजे रात
मैं खूब खांसता रहा और बुरी तरह कराहता भी रहा किन्तु डा० वि
लालजी को दिया गया वचन निभाने के लिए मैं उसी स्थिति में अ
पूर्वक खुले आकाश के नीचे ही लेटा रहा। एक बजे के पश्चात
समय मुझे निद्रा देवी ने अपनी गोद में ले लिया, कह नहीं सकता

प्रातः काल जब ६ बजे के आस-पास सूर्य की प्रथम किरण ने मुझे झकझोरा और मेरी आंखें खुलीं तो आश्चर्य के साथ मैंने महसूस किया कि ७५ प्रतिशत मेरे शरीर का रोग समाप्त हो गया था। मेरा शरीर काफी हल्का था और खांसी बहुत मामूली बाकी थी। शायद टेम्परेचर तो बिल्कुल नहीं महसूस होता था। थोड़ी देर बाद हमारे साथी भी उठ गये। उन्होंने उठते ही मेरी ओर देखा। उनकी आंखों के प्रश्न को मैं समझ गया और मैंने कहा कि मेरी तबीयत रात के बनिस्बत् काफी अच्छी है।

मेरे साथियों में से एक आश्चर्य से बोला "चिकित्सा की यह पद्धति वास्तव में अद्भुत है। जब सभी डाक्टर लोग ऐसी दशा में ठंड से बचने के लिए आग्रह करेंगे तो इन प्राकृतिक चिकित्सक महोदय ने ठीक उसके विरोध की चिकित्सा की"। मेरे मस्तिष्क में भी लगभग यही भावना थी।

उस दिन मैं बिलकुल निराहार रहा और केवल जल ही लेता रहा। दोपहर के लगभग ३ बजे स्वर्गीय डाक्टर श्री किशनलाल जी पुनः मेरा हालचाल लेने आये। मैंने उनसे अपनी सारी दशा बताई। उन्होंने मुस्कराते हुए कहा "कल जब मैं आपको चिकित्सा की सलाह दे रहा था तो मैं सोच रहा था कि बता तो मैंने जरूर दिया है किन्तु आप वैसा करने का साहस नहीं करेंगे। लेकिन मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई कि आपने आग्रह पूर्वक मेरे कहने के अनुसार साहस किया और प्रकृति माता के अमूल्य वरदान का अनुभव किया। वास्तव में प्रकृति हमें शीघ्रातिशीघ्र ठीक करना चाहती है, बशर्ते कि हम एकान्त भाव से उनके चरणों में शरण लें। जिस हवा से लोग कहते हैं कि खांसी

जुकाम बढ़ता है, उसी ने आपको निरोग कर दिया। बहरहाल प्रसन्नता है कि आपने प्राकृतिक चिकित्सा का एक अनुभव लिया।'

अपनी उपरोक्त कहानी मैंने अपने कई मित्रों को सुनाई। सुनकर आश्चर्य करते हैं और मैं भी जब कभी मुझे स्मरण हो जात तो आश्चर्य करता हूँ।

डा० साहब के प्रति उपरोक्त घटना से ही मेरी अत्यन्त आ की भावना बनी हुई है। उनके सम्बन्ध में कई प्रकार की घटनायें सुनी हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि उन्होंने काफी कठिन रोगों अपनी अमूल्य चिकित्सा से ठीक किया है। डा० साहब अभी कुछ दि संसार में रहते तो मुझे आशा थी कि वे अपनी चिकित्सा की पद्धति द्वारा कितने ही पीड़ित मानवों का कल्याण करते।

मैं डा० साहब के लिए भगवान से प्रार्थना करता हूँ।

'अपने दीर्घ जीवन के आधार पर मैं अन्तः करण से कह सका हूं कि यदि पृथ्वी पर एक भी डाक्टर, अस्त्र-चिकित्सक, औषधि विक्रेता, तथा एक भी बूंद दवा नहीं रहती तो जिस प्रकार पृथ्वी पर आज रोज मृत्यु का प्रादुर्भाव है—वह अपेक्षाकृत बहुत कम होता।

डा० जानसन एम० डी०

[१४]

अडिग विश्वास वाले व्यक्ति

(श्री पूर्णचंद जैन, जयपुर)

सादगी की मूर्ति, निरभिमानी, निष्ठावान्, अपने विश्वास में डेग और सेवा के लिए हर क्षण तत्पर–ऐसे थे डा० किशनलालजी।

अपनी बीमारी के कई प्रकार से इलाज कराने में सफलता न लने पर प्रकृति के अटूट भंडार–मिट्टी पानी, धूप-से उन्हें रोग मुक्ति चानक और अनायास मिली। तब से वे प्राकृतिक चिकित्सा के भक्त, उके बड़े प्रयोगकर्त्ता और एक सफल चिकित्सक हो गए। देह मुक्त ाने तक वैसे बने रहे।

आज महंगी दवाओं के लिए और अस्पतालों, औषधालयों, वाखानों में जिस प्रकार खर्चा होता है और रोगियों को परेशानी ठानी पड़ती है उसे देख कर उनका जी तड़प उठता था। वे कहते थे, प्रकृति ने रोग दूर करने का, दिल–दिमाग को ताजगी और ताकत देने ा, कितना भंडार भर रखा है, लेकिन इससे फायदा न उठा दिन-ब-दिन म लोग लुटते जा रहे हैं।

कुछ संयोग बना और डाक्टर साहब ने बैठना मंजूर किया। श की आजादी के बाद का शानदार कांग्रेस अधिवेशन वहां हुआ था, सी समय विनोबा का वहां कुछ दिन मुकाम रहा था और ऐसे जिस थान पर कुछ गांधी–प्रवृत्ति चलाने की जयपुर के साथियों की भावना थी, वहां प्राकृतिक चिकित्सालय की नींव पड़ी।

जमीन, झोंपड़े और फिर मकान वगैरह तो भौतिक साधन थे कुछ जुटे, कुछ नहीं जुटे। और जैसा कि रचनात्मक प्रवृत्तियों आज का भाग्य है, इन भौतिक साधनों के लिए बराबर कश-म-क करनी पड़ी, अब भी करनी पड़ रही है। लेकिन चिकित्सालय में प्रार प्रेरणा और चारों तरफ से निराश हुए रोगी को भी आशा की भूमि दे सकने वाले व्यक्ति श्री किशनलाल जी के रूप में चिकित्सालय मिल गए।

रोग किसी भी प्रकार का हो, रोगी की लंबी बीमारी, कमजोरी वगै के कारण जैसी भी हालत हो, श्री किशनलाल जी को इलाज में हा डालते, तुरंत इलाज शुरू करते और रोगी व उसके घर वालों को धैर्य व आश्वासन बंधाते कभी झिझक नहीं होती थी। काफी रोगी ठीक होकर गए और डाक्टर साहब तथा चिकित्सालय को यश मिला।

आडम्बर और विज्ञापन के इस युग में चिकित्सालय अधि लोगों को आकर्षित नहीं कर सका। लेकिन जहां तक चिकित्सा चिकित्सक का ताल्लुक है, डाक्टर किशनलाल जो ऊपर से जैसे दिखते थे उस से बहुत अधिक और असाधारण योग्यता क्षमता वा व्यक्ति साबित हुए।

जो निष्ठा और विश्वास उनमें था तथा जो अनुभव स्वयं अपने जीवन व प्रयोगों द्वारा उन्होंने प्राप्त कर लिया था उसके साथ वैज्ञानिक शोध, अन्वेषण तथा शास्त्र बनाने की वृत्ति भी उनमें होती तो प्राकृतिक चिकित्सा क्षेत्र को उनसे जितना कुछ मिला उससे बहुत अधिक मिलता।

उनके संपर्क में आए व्यक्तियों, खासतौर से प्राकृतिक चिकित्सा
ते में कुछ गति रखने वाले तथा उनके साथ कार्य किए हुए व्यक्तियों
वाहिए कि उनसे जो कुछ उन्होंने सुना, उनके जो कुछ प्रयोग उन्होंने
या रोगोपचार उनके मार्ग दर्शन में किए कराए उसे संकलित कर
तिक चिकित्सा या प्राकृतिक जीवन पद्धति के शास्त्र-भंडार को
टर साहब के अमूल्य अनुभव रत्नों से थोड़ा बहुत भरने का प्रयत्न
। यह उनके प्रति उत्कृष्ट श्रद्धांजलि तथा समाज के लिए बहुत बड़ी
ा होगी।

[१५]

परम भाग्य

—श्री कृष्ण चन्द्र, उरुली कांचन

डाक्टर श्री किशनलाल जी के देहावसान के समाचार मिले। वे अंतिम घड़ी तक चैतन्य अवस्था में रहे और रामनाम लेते लेते देह छोड़ी, यह जानकर धन्यता लगी। यह बात परम भाग्य से ही होती है। ऐसी मृत्यु स्पृहणीय है।

स्मरणांजलि

(श्री रामेश्वर दास गर्ग, प्राकृतिक चिकित्सालय, जयपुर)

प्राकृतिक चिकित्सालय, बापू नगर में बाबाजी श्री किशनलाल के साथ मुझे लगभग २ वर्ष रहने व काम करने का सुअवसर मिला वे प्राकृतिक चिकित्सा के दृढ़ भक्त एवं साधक थे। प्राकृतिक चिकित्सा विविध प्रयोग वे निरंतर अपने पर तथा यहां आने वाले विभिन्न रोगि पर करते रहते थे। प्रकृति की शक्ति में उन्हें सुदृढ़ विश्वास था। उन चिकित्सा के दौरान में रोगियों में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति निष्ठा जमा का रहस्य उनकी दृढ़ता एवं पूर्ण निष्ठा पूर्वक कहे हुए 'वाक्य' होते थे वे वाक्य बीमारों के अन्तर्मन में विश्वास जागृत कर शीघ्र अनुकूल प्रवि याओं में परिणत होकर स्वास्थ्य निर्माण करने में सहायक होते थे।

उनकी साधना एवं प्रयास से इस प्राकृतिक चिकित्सालय क निरन्तर विकास हुआ। यह चिकित्सालय उनके निमित्त से स्थापित होकर विकास की ओर अग्रसर हो रहा है। उनकी चिकित्सा से स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करने वाले कई व्यक्ति इस पद्धति के भक्त बन कर यहां से गए। उन लोगों ने अपने क्षेत्र में औरों को भी इस पद्धति से लाभा न्वित किया व आज भी इस पद्धति का प्रचार प्रसार कर रहे हैं।

अंतिम क्षणों में बाबाजी से दो-तीन बार मिल पाया था। उनकी कृति-निष्ठा पूर्ववत् कायम थी। अन्त काल में उनमें प्रभु भक्ति भी जागृत हुई। वह महान् आत्मा अब अनन्त में विलीन हो गई। उन नीत आत्मा के लिये चिकित्सालय परिवार की श्रद्धांजलि अर्पित है।

[१७]

उनका जागृत जीवन

—श्री शांतिस्वरूप गुप्ता, जयपुर

बाबाजी श्री किशनलाल जी एक नवयुवक के रूप में मुझे सदा
। प्यार देते रहे। वे अक्सर कहते, 'मुझे तुमसे बहुत २ आशाएं
मैं चाहता हूँ कि तुम मेरे पास रहो ताकि जो कुछ मेरे पास है तुम्हें
कूं।' कई प्रसंगों पर तो वे बड़ी बेचैनी से कहते "मुझे लोगों के
। पर रोना आता है जब उन्हें डाक्टरों और वैद्यों के पीछे दौड़ते
देखता हूँ। मैं स्वयं अपने अनुभव से कहता हूँ कि मानव मात्र
ूप से स्वस्थ है, पर अपने को भूल जाने के कारण ही भटकता
ता है। वह, वह खाता है जो नहीं खाना चाहिए और वह करता है
नहीं करना चाहिए। इससे बीमार पड़ता है और रोता है।"

बाबाजी के संपूर्ण जीवन की घटनाओं का विवरण सुनते सुनते
ी २ तो घन्टों बीत जाते थे। उनके कहने में अत्युक्ति का भी
स होता पर उसकी पुष्टि दूसरों के मुंह से सुनकर तो आश्चर्य ही
ोता था।

उनके प्रयोग भी बड़े अद्भुत होते थे। पिछले जाड़े में प्रातः
-६ बजे की कड़ी सर्दी में रेतीले-टीलों पर गड्ढे खोदकर टोली के
ाथ बैठना, घन्टे–डेढ़ घन्टे तक लगातार स्वांस के व शरीर सम्बन्धी
अनेकों व्यायाम करना व कराना, अध्ययन करना आदि के संस्मरण

वड़े ही प्रेरणादायक हैं। मैंने स्वयं भी उनके इस प्रकार के
का लाभ उठाया है।

बाबाजी के जीवन के आखिरी दिनों का पूर्ण चैतन्यमय ज
वस्था का विवरण ही ऐसा अद्‌भुत है जिसे सुनने पर किसको आ
नन्द की अनुभूति नहीं होगी।

डाक्टर, वैद्य हकीम तीनों कमाने का पेशा करते हैं, दूसरों के भले के लिए वे चिकित्सा कार्य नहीं सीखते। यह दूसरी बात है कि इनमें कोई-कोई परोपकारी भी होते हैं। केवल एक कुदरती इलाज ही है कि जिसका जन्म परोपकार में हुआ है।

गांधी जी

[१८]

निसर्गोपचार उन्नायक

—श्री मनोहर सिंह पवार, इन्दौर

डाक्टर श्री किशनलाल जी प्राकृतिक चिकित्सा के एक अग्रणी एवं उन्नायक थे। उनकी सेवाएँ भुलाई नहीं जा सकतीं। जयपुर चिकित्सालय की संस्थापना का श्रेय उन्हीं को है। ईश्वर उनकी मृतात्मा को शान्ति प्रदान करे।

महारोगी से प्राकृतिक-चिकित्सक

—प्रो० नेमिशरण मित्तल, एम० ए०,

भगवान भक्त की रक्षा करते हैं। ऐसी कहावत है, फिर भी
ावान के भक्तों को प्रायः सांसारिक कष्ट उठाते हमेशा ही देखा जा
ाता है। इसके विपरीत यह सत्य है कि प्रकृति अपने भक्तों को
श्चित रूपसे ही सुख और शान्ति का कवच प्रदान करती है। नियति
ा विधान बहुधा विचित्र कहा जाता है। हमारा मानना है कि नियति
ा विधान अत्यन्त सरल, सुगम और निश्चित है, उसमें कोई अपवाद
हीं हो सकता। प्रकृति के नियमों को जो पहचान कर उसकी परम
ता के सामने आत्म-समर्पण कर देता है अर्थात् नियति के
ियमों का सम्यक् परिपालन करता है वह कभी भी घटनाओं को
ाश्चर्य की दृष्टि से नहीं देखेगा। उसके लिए सारा जागतिक व्यापार
ौर व्यवहार एक वैज्ञानिक सत्य बन जाता है और वह व्यक्ति आत्म-
िरपेक्ष भाव से उस सबको देखा करता है। यहाँ हम एक ऐसे जीवन
ी क्रान्ति-गाथा को सुना रहे हैं, जो महारोगी से बदल कर समाज के
लिए एक अनमोल वरदान सिद्ध हुआ और जिसके द्वारा प्राकृतिक-
चिकित्सा की प्रेरणा अनेक जनों के श्वास का अखण्ड संगीत ही नहीं,
वरन् उनके जीवन की सञ्जीवनी बन गई।

सम्वत् १९४६ की बात है। भादों का महीना था, कृष्णपक्ष की
दूज के चन्दा के साथ श्री माधोपुर (जयपुर) के सम्पन्न श्रेष्ठी श्री

बाबूरामजी के घर में प्राकृतिक चिकित्सा के क्षितिज का बलवान उदय हुआ, जो हमारे इस निबन्ध का नायक है। बालक का किशनलाल अग्रवाल रखा गया—कृष्णपक्ष में जो वह जन्मे थे। सुख-दुःख के साये में श्री किशनलालजी पलते रहे, बढ़ते रहे। परि की आर्थिक स्थिति बिगड़ी, माया कब किसकी होकर रही है। ब की पढ़ाई सातवीं कक्षा से ही टूट गई। इस समय उनकी आयु स वर्ष की थी। वैश्य बालक ने व्यापार में हाथ डाल दिया। मनोयो काम करने की वृत्ति जन्म से थी। व्यापार सोना उगलने लगा। वि हो गया और पैसे की माया चारों ओर जाल बुनने लगी कि श का छीजना शुरू हो गया। वह साधारणतया धन का पहला अभि हुआ करता है; इनके बारे में भी वह बात खरी उतरी।

रोगों का होस्टल!

श्री किशनलालजी का 'शरीर रोगों का एक होस्टल' बन गय कमर पर श्वेत-कुष्ठ का एक दाग हुआ। उसकी चिकित्सा शुरू हो ग यानी काया का फाटक सब रोगों की अगवानी के लिए खुल गया। व दाग तो मिटा नहीं, उसके साथ दमा भी आ गया और हर प्रकार गर्म इलाज शुरू हो गये। काशी से कोई पेटेण्ट दवाई मँगा कर खा गई तो दमा कुछ ढीला पड़ने लगा, मगर खुजली सारे शरीर को पक कर बैठ गई। खुजली के साथ ही दमा फिर जोर पकड़ गया। पीड़ मिटाने और बेहोशी के लिए धतूरे और अफीम का नशा शुरू हो गया। श्वेत-कुष्ठ बढ़ रहा था, खुजली और दमा भी पूरी तरह जमे बैठे थे। बवासीर शुरू हो गई। कलकत्ता गये। शरीर की जाँच कराई

र्ट मिली कि शरीर के भीतर छोटे-बड़े चवालीस रोग थे। काया होस्टल में चवालीस सदस्य भरती हो चुके थे ! नींद भाग गई और मृत्यु-देवी की आराधना करके किशनलालजी उसका आह्वान करने लगे, परन्तु जो शरीर लोक-कल्याण की महती साधना के लिए सृजा गया उसको छूने का साहस मृत्यु उस जवानी में तो क्या कर पाती, आज सत्तर साल की आयु में भी नहीं कर पा रही है।

प्राकृतिक चिकित्सा की ओर

उन्हीं दिनों संयोगवश किशनलालजी की भेंट श्री चन्द्र प्रभु श्वेतानन्द सरस्वती नामक एक महात्मा से हुई, जिनकी आयु लगभग ५५ वर्ष की थी। वे मन के बड़े उच्चकोटि के साधक थे। श्री किशनलालजी नियमित रूप से श्री स्वामीजी के लिए भोजन भेजते थे। बात यह थी कि उन दिनों किशनलालजी नौशेरा (उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त--पाकिस्तान) में व्यापार करते थे और वहाँ ये स्वामीजी, जो गुजरात के रहने वाले और वैष्णव थे, निरामिषाहार के व्रत के कारण किसी और के यहाँ भोजन नहीं कर पाते थे। श्री स्वामीजी किशनलालजी की सेवा से बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने एक दिन इनसे कहा कि बिना दवा के भी इलाज हो सकता है। इन्हें इस बात पर विश्वास तो नहीं आ रहा था, परन्तु स्वामीजी के कहने पर इन्हें विश्वास हो गया और इन्होंने स्वामीजी से कहा। स्वामीजी ने बताया कि वह तो उस पद्धति के जानकार नहीं थे, परन्तु वह इस बात के लिए तैयार हो गये कि स्वयं मुरादाबाद (उत्तरप्रदेश) के श्री किशनस्वरूप श्रोत्रिय से उस पद्धति को सीखने के बाद किशनलालजी की चिकित्सा कर

सकेंगे। श्री स्वामीजी किशनलालजी से पाँच सौ रूपया लेकर मुरादाब पहुँच गये और एक महीने बाद उन्होंने टब इत्यादि कुछ वस्तुएं भेज दीं।

एक दिन किशनलालजी को खुजली का भयंकर दौरा हुआ केमिस्ट की दूकान बन्द होने से डाक्टरी दवाई भी न मिल सकी। उ बेचैनी की घड़ी में उन्होंने बिना जाने-पूछे टब में पानी भरा और उसमें बैठ गये। थोड़ी देर तक पानी में यों ही बैठे रहे, कुछ चैन मालू होने लगा तो निकल आये और उन्हें उस रात को कई वर्षों के बाद पहली बार नींद आई! अगले दिन उन्होंने कई बार स्नान किया। उससे इन्हें बड़ा चैन मालूम पड़ा और इन्होंने स्वामीजी को तार देकर मुरादाबाद से वापिस बुला लिया। स्वामीजी से इन्होंने व्यवस्थित रू से प्राकृतिक चिकित्सा के मर्म को ग्रहण कर लिया। साथ ही इन्हों प्राकृतिक चिकित्सा सम्बन्धी बहुतसा साहित्य भी मंगाकर पढ़ डाला ये अपनी चिकित्सा ढंग और निष्ठा के साथ चलाने लगे तथा स्वास्थ्य लाभ करने के अतिरिक्त प्राकृतिक चिकित्सा के रहस्यों को भी हृदयंगम करने लगे। इनके ऊपर से मृत्यु की भीषण विभीषिका टल गई और जीवन की नई आशा का संचार इनके भीतर-बाहर होने लगा।

दूसरों की चिकित्सा का उत्साह

श्री किशनलालजी के मन में प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति ऐसी निष्ठा बैठ गई कि वे निरन्तर उसी की शोध में लग गये। उनके मित्र और परिचित जब भी उनकी सलाह लेते तो वे उनकी चिकित्सा बड़े मनोयोग से करते। इस प्रकार उनकी इस कला का प्रचार होने लगा

उनका लगभग पूरा समय उसी काम में लगने लगा। इससे उनके
ार में हानि होने लगी। वे शीघ्र ही, सम्हले और व्यापार को
ला जिससे आप उस ओर से निश्चिन्त हो गये और वहीं अब
के साथ ऐसा मित्रमंडल का निर्माण हो गया जो प्राकृतिक चिकित्सा
अनन्य भक्त बन चुका था। श्री किशनलालजी धीरे-धीरे चिकित्सक
ने लगे और अनेक रोगियों की चिकित्सा कुशलतापूर्वक करते रहे।
ं यह कह देना ठीक होगा कि किशनलालजी स्वयं पूर्ण स्वस्थ नहीं
पाये थे, परन्तु उनकी निष्ठा पुष्ट हो गई थी और उनकी प्रयोगपरा-
ण प्रकृति उनके लिए प्रकृति के रहस्यों की खोज में बहुत ही सहायक
द्ध हुई। उनके मनमें यह साध पैदा हुई कि वह एक सैनिटोरियम
कृतिक चिकित्सा के आदर्श के आधार पर चलायें, परन्तु 'मेरे मन
छु और है विधना के कछु और' इस कहावत के अनुसार किशनलाल
ी का अरमान मनमें ही रह गया और उन्हें अपनी सम्पत्ति और
यापार सब कुछ अन्य शरणार्थियों की भांति छोड़कर भागना पड़ा क्यों-
क वह देश अब उनके लिए परदेश होगया था और पाकिस्तान के निर्माण
के फलस्वरूप साम्प्रदायिक विद्वेष की आग मानव को दानव में बदल
रही थी।

प्राकृतिक चिकित्सालय, जयपुर की नींव

देश का विभाजन हुआ और श्री किशनलालजी नौशेरा से श्री
माधोपुर (राजस्थान) आ गये। वहां रह कर वे प्राकृतिक चिकित्सा के
प्रयोग करने लगे। इसी बीच आपने सन् १९४९ में राजस्थान खादी
संघ के तत्कालीन मंत्री और प्रदेश के प्रसिद्ध रचनात्मक कार्यकर्ता श्री

रामेश्वर जी अग्रवाल (वर्तमान काल में मंत्री, खादी समिति, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ) की धर्मपत्नी की सफल चिकित्सा की। कुछ दिनों के बाद राजस्थान के प्रसिद्ध धनी श्री सोहनलालजी दुग्गड अपने साइटिकादर्द के इलाज के प्रसङ्ग में जयपुर आये। वहां आपने प्राकृतिक चिकित्सा कराने की राय प्रकट की। श्री रामेश्वरजी ने श्री किशनलाल जी को श्री माधोपुर से बुलाया और अनेक कठिनाइयों के बावजूद सेठजी की चिकित्सा आरम्भ कर दी गई। धीरे धीरे श्री सोहनलाल जी दुग्गड स्वस्थ हो गये और उनके मनमें प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति निष्ठा पैदा हो गई और डाक्टर किशनलालजी के प्रति भी। यहां हमने अपनी इच्छा के विपरीत श्री किशनलाल जी को डाक्टर कहा है, क्यों कि अब वह वास्तव में डाक्टर कहलाने ही लगे हैं, जबकि वास्तव में डाक्टरों वाली सभ्यता के कट्टर शत्रु हैं।

श्री सोहनलालजी दुगड़ ने आर्थिक सहायता दी, डा० किशनलालजी ने संकल्प किया और श्री रामेश्वर जी अग्रवाल ने पुरुषार्थ किया-जिसके फलस्वरूप गांधी नगर, जयपुर में प्राकृतिक चिकित्सालय की स्थापना २ अक्तूबर १९५० के दिन प्राकृतिक चिकित्सा के हिमायती पूज्य बापू की पुण्य स्मृति में हो गई। आठ वर्ष से ऊपर की इस अवधि में अनेक उतार-चढ़ाव आये हैं। समिति बनी सरकारी मदद मिली, विरोध उठे, कठिनाइयां आईं, मगर धुनके पक्के डा० किशनलाल आज भी प्राकृतिक चिकित्सालय की अखंड सेवा कर रहे हैं। उनके निकट बैठकर ऐसा लगता है मानो वे प्रकृति को बहुत नजदीक से जानते और पहचानते हैं तथा उसके सच्चे पुत्र बनकर उसके रहस्यों का उद्घाटन उसकी सन्तान के लिए कर रहे हैं। यह सच ही है। अव्य

सरल, निरहं और शांत डा० किशनलालजी का लाभ हम पूरा नहीं उठा रहे हैं ऐसा हमें लगता है। उनका विशाल ज्ञान और अनुभव का भंडार हम उनसे ले नहीं सकें। यह एक दुर्भाग्य की घटना है कि उनके पास कोई ऐसा व्यक्ति उनके सहयोगी के रूपमें न बैठाया जा सका जिसकी आस्था प्रकृति में उनके जैसी अनन्य होती और जो उस ऋषि के पास जिज्ञासु की विनीत वृत्ति से बैठकर उनके विस्तृत ज्ञान को आत्मसात् कर लेता। अभी भी यदि हम चेत सकें और इतना कर सकें, तो डाक्टर किशनलालजी पर कोई अहसान नहीं होगा, वरन् मानव जाति के प्रति यह हमारा बड़ा उपकार होगा। डा० साहब ने अनेक परिवारों में प्रकृति के प्रति वह निष्ठा और श्रद्धा पैदा की है कि वे हमेशा उन्हें त्राता और मुक्तिदाता के रूपमें जानते हैं। ऐसे ही सौभाग्यशालियों में से इन पंक्तियों के लेखक का भी परिवार है और वह समूचा परिवार विनीत भाव से अपनी श्रद्धा डा० साहब को समर्पित करता है। ईश्वर करे, वे शतायु हों, सहस्रायु हों।

डॉ० किशनलालजी की छाया में

—श्री सरदारमल जैन, व्यवस्थापक 'ग्रामराज' जय

बहुत वर्षों पहले की बात है, जब मैं 'लोकवाणी' दैनिक में का करता था, एक दिन सिद्धराजजी भाई साहब ने एक दक्षिण भारती भाई से मेरा परिचय कराया जो उन दिनों अलवर में एक प्राकृति चिकित्सालय चला रहे थे। उनके पिता अंग्रेजी में एक प्राकृति चिकित्सा संबंधी पत्रिका निकालते थे जिसका हिन्दी अनुवाद राजस्था से निकले—ऐसा सोचा जा रहा था। सिद्धराजजी ने मुझे उनको मद करने को कहा। इस प्रकार पहली बार एक प्राकृतिक-चिकित्सक वे सम्पर्क में आया। अलवर के चिकित्सालय का दो दिन रह कर थोड़ा उड़ता-उड़ता अध्ययन किया। उस सबने प्राकृतिक चिकित्सा के प्रति मुझे थोड़ा आकर्षित किया और मैं अपनी पत्नी की प्राकृतिक चिकित्सा कराने की सोचने लगा।

उसी समय मुझे पता चला कि जयपुर में गांधीनगर में एक प्राकृतिक चिकित्सालय चलता है। एक दिन मैं वहां पहुँचा, मन में अलवर के प्राकृतिक चिकित्सक की जो तस्वीर बस रही थी वह वहां कहीं न लगी। पूछने पर जिन चिकित्सक की ओर इशारा किया गया वे अधनङ्ग दशा में, गर्मी की मौसम में एक पेड़ के नीचे, धूल (मिट्टी) में बैठे दिखाई दिये। एक-दो आदमी और वहां बैठे थे। जैसे ही वहां

ठा व थोड़ी देर चर्चा-वार्ता सुनता रहा तो धीरे-धीरे मुझे उस 'ऋषि' अत्यन्त श्रद्धा हो आई और अपनी पत्नी का वहां इलाज कराने का ाय किया।

उन दिनों आज के से प्राकृतिक चिकित्सालय का रूप नहीं ा। चारों तरफ दस-बीस झौंपड़ियों का समूह था—ऐसी झौंपड़ियां जो न आंधी रोक सके न बरसात। एक कातले बिछे चबूतरे पर रोगीगण अपना खाना पकाते, लूएँ चलती रहती और मिट्टी के कण उड़-उड़कर आटे व रोटी में मिलते रहते और वहीं हमारा भोजन बनता। मुझे पहले तो यह सब अटपटा लगा पर बाबाजी (स्व० किशनलालजी) इसी को प्राकृतिक चिकित्सा सिद्ध कर देते तो मुझे निम्न पंक्तियां याद आ जातीं—

'मिट्टी ओढना, मिट्टी बिछौना, मिट्टी दाना-पानी है।
मिट्टी ही तन-वदन हमारा, यह सब ठीक कहानी है॥'

और सच कहिये तो इस वाक्य में उन दिनों के प्राकृतिक चिकित्सालय का सही रूप प्रतिभासित होता था। जब वर्षा आती तो सारी कुटियोंवाले अपनी कुटियां छोड़-छोड़कर बाबाजी की शरण जाते, पर बाबाजी जिस मकान में रहते थे वह भी नाम-मात्र का पक्का था। बरसात में चारों ओर से चू पड़ता, सब जगह गीला ही गीला हो जाता—पर उस जीवन में जो आनन्द था, एक दर्शन था, एक अजीब फिजां थी वातावरण में—उसके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ ही लगते थे। वह सच्ची प्राकृतिक जीवन की ट्रेनिंग थी। एक प्रकार की साधना ही थी। बाबाजी किशनलालजी तो उस महान् साधना के प्रत्यक्ष केन्द्र बिन्दु थे

ही पर वहां चिकित्सा के लिये आने वाले रोगी व उसके घरवाल भी एक विशेष जीवट की आवश्यकता होती थी। जो उस साधना में उतरते थे अमृत उनको मिलता था। बाकी भाग खड़े होते।

पर इतनी साधना के बावजूद भी गर्मियों के दिनों में तो समय प्राकृतिक चिकित्सालय में रोगियों की इतनी भीड लगी रहती कभी-कभी तो प्रवेश देना भी कठिन होजाता था। जो एक-व बाबाजी के सम्पर्क में आया, थोड़े दिन अपने या अपने परिवार वा की चिकित्सा भी की वह स्वयं तो आधा डाक्टर बनकर ही चिकित्स लय से निकलता था। बाबाजी के स्व-अनुभव—किस प्रकार से उ जैसे बनिये को स्वयं कुष्ठ रोग से ग्रसित होने पर, सब तरह से इलाज हो जाने पर, जीवन से ऊब जाने पर, प्राकृतिक चिकित्सा की एक पुस्तक ने अन्तर्दृष्टि दी और वे धीरे-धीरे स्वयं अपनी चिकित्सा से कैसे आरोग्य हुए—की एक रोमांचकारी कहानी है जो सुनने वाले को प्राकृतिक चिकित्सा का भक्त बना देती है। इसके साथ-साथ ही रोगी व उसके घरवाले देखते, अपने सामने इस चिकित्सालय में आने वाले विचित्र प्रकार के रोगियों को—ऐसे रोगियों को जो एलोपैथिक व आयुर्वेदिक चिकित्सा करा कराकर थक चुके हैं और 'ना इलाज' का सर्टिफिकेट प्राप्त कर चुके हैं, कि वे कैसे बाबाजी के 'अनाड़ी' जैसे उपचारों से धीरे-धीरे रोग मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ कर रहे हैं तो फिर बाबाजी के चिकित्सा-दर्शन को इस प्रत्यक्ष सत्य से वे कैसे झुठलाते!

एकबार बाबाजी का लड़का जल गया। उन दिनों मैं वहीं था— मैंने देखा उन्होंने तत्काल उसे वर्फ के पानी के टब में छोड़ दिया और

समय तक उसे रक्खा जब तक कि उसके शरीर की सम्पूर्ण जलन हो गई और दूसरे दिन वह एकदम स्वस्थ था।

उनके ही एक बड़े बच्चे को जोरों का हैजा हुआ। तुरंत प्राकृतिक त्सा की गई। बाबाजी से प्रश्न पूछे बिना मुझसे न रहा गया। कहा—'आप तो कहते हैं कि प्राकृतिक जीवन से शरीर की वह बन जाती है कि जिसमें रोग नामका पदार्थ पैदा ही नहीं सकता तो फिर कैसे व क्योंकर लालचन्दजी को हैजे ने दबोच या।' तुरन्त ही उन्होंने समाधान किया—'हम घर पर एकदम कृतिक आहार (चापड़ सहित हाथ के आटे की रोटी, उबली सब्जी) ते हैं इससे शरीर एकदम विशुद्ध बन जाता है। विशुद्ध शरीर किसी कार के विजातीय द्रव्य को सहन नहीं कर सकता। प्रकृति स्वयं क्ति-भर शरीर को निरोग बनाये रखने की क्रिया करती रहती है। भी लालचन्द ससुराल गया था वहां अप्राकृतिक भोजन के सम्पर्क में आ गया—कुछ तली हुई चीजें खाई, नतीजा यह हुआ कि प्रकृति ने त्काल सफाई आन्दोलन शुरू कर दिया। इसकी चद्दर एकदम साफ़ थी इसलिये जरा भी दाग असह्य था—यदि शरीर पहले से कुछ विकृत रहता तो उस विकृति में यह विकृति और शामिल हो जाती और विकृति ग्रहण करने का प्रकृति का स्वभाव बन जाने पर वह उतनी त्वरित गति में क्रियाशील न बनती।'

हमारा रोजका अनुभव है कि जीर्ण रोगमें सुधार की गति प्रकृति की कितनी मन्थर होती है, जब कि तीव्र रोग एकदम तीव्र गति में आक्रमण करते हैं और उनका रूप भी मारात्मक सा ही होता है। जरा चूके कि जीवन-लीला समाप्त।

पत्नी के इलाज के बाद तो बाबाजी की व मेरी घनिष्ठता बढ़ती ही गई, एक पिता-तुल्य मार्गदर्शन उनसे मिलता था। कितना अथ प्रेम उनका व उनके घरवालों का मुझ पर रहा ! जब जब भी व गया तो एक घर का सा वातावरण लगा—पूरे घर भर के समाचार व देने होते। आज के चिकित्सालयों में वह निकटता कहां ! वहां तो केव व्यापारिक संबंध ही बनता है और कोई यह नहीं कहता कि यह र हुआ क्यों, रोग ही न हो इसका तरीका क्या ? रोग हो जाने पर व खाना क्या नहीं खाना इसका थोड़ा बहुत ध्यान कुपथ्य की दृष्टि आयुर्वेद वाले जरूर कभी कभी कुछ बता देते हैं पर ऐलोपैथ आपको जो इच्छा हो सो खाने की खुली छूट ही दे देते हैं। किस प्रक से इनकी प्रक्रिया से रोग का समूलोच्छेद नहीं बल्कि उसको दबाने प्रक्रिया चलती रहती है और नाना रूप धर कर किस प्रकार वह पु पुनः आक्रमण कर रोगी के शरीर को जर्जरित करता रहता है— सब दर्शन रोज बाबाजी से सुनने को मिलता और प्रत्यक्ष सुनने मिलती उन रोगियों की राम कहानी जो बाबाजी के शब्दों को ही प्र ध्वनित करती सी जान पड़ती।

प्राकृतिक चिकित्सालय में कुछ समय व्यवस्थापक रहने व द आयोजित एक प्राकृतिक-चिकित्सा शिविर की व्यवस्था देखने सं कार्य जब मुझे मिला तब तक प्राकृतिक चिकित्सा के सिद्धांतों व इ जीवन-दर्शन पर मेरी गहरी निष्ठा जम गई थी और वह ऐसी आज तक उखड़ती लगती नहीं। बाबाजी के दरबार में सभी प्रकार रोगी, गिरी से गिरी हालत वाले भी आते, कुछ पूर्ण लाभ लेकर उ

कुछ बीच में भी छोड़ जाते पर बीच में छोड़ने वाले भी प्राकृतिक
कित्सा के भक्त ही बनकर जाते। बाबाजी को सब केसों में
। प्रतिशत सफलता ही मिलती हो यह कहना भी अतिशयोक्ति
गी, पर अधिकांश में वे सफलता का श्रेय प्राप्त करते। वे
नते थे प्राकृतिक चिकित्सा के इस मूल स्रोत को–'सब रोगों की
ड़ पेट है, खाद्य-अखाद्य पदार्थों के सेवन से उस पर जो जो अत्याचार
रते रहते हैं उनका प्रतिफल ही यह रोग है और इस पाप का प्रतिकार
ावास व्रत व उसके बाद प्राकृतिक-जीवन, आहार-विहार ही हो सकता
।' और मैंने अध्ययन कर प्रत्यक्ष देखा कि जो किसी न किसी प्रकार
उदर संबंधी रोग से पीड़ित थे और उसके कारण पाचन यंत्र की
राबी से जो नाना प्रकार के रोग उनको हो गये थे उनमें से अधिकांश
ोड़े दिनों के प्राकृतिक आहार-विहार, उपवास, जल व मिट्टी चिकित्सा
धूप स्नान से पूर्ण स्वस्थ हो गये। वे अपने में पुनः बल व शक्ति
हसूस करने लगे और उनकी काया ऐसी हो गयी मानो उनको किसी
मस्त्री ने अन्दर से धोकर निर्मल बना दिया हो।

मुझे कई बार लगा कि बाबाजी अपनी 'पैथी' के लेबल को
ढ़ता से पकड़े रहने में ही इष्ट मानते थे। वैसे साधक की यही स्थिति
नती है। अपनी सम्पूर्ण श्रद्धा का समर्पण कर डूब जाने पर ही मोती
ाप्त हो सकते हैं। और इस मामले में बाबाजी सबसे सर्वोच्च साधक
थे। ऐसे महात्मा के प्रति मैं अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूं।

---

[२१]

मुझ पर उनके अनन्त उपकार

—श्री बच्छराज, ज०

श्रद्धेय बाबाजी (स्व० डॉ० किशनलालजी) को अपनी श्रद्धांजलि किन शब्दों में अर्पित करूं यह समझ में नहीं आता। हृदय के अपरिमि भावों को व्यक्त करने की सामर्थ्य मुझे अपने में प्रतीत नहीं होती।

स्वस्थ जीवन से बढ़कर इस संसार में कोई वस्तु मूल्यवान् नहीं है। रोगी रहकर जीना अथवा औषधियों के सहारे जीना भी कोई जीना है ? मुझे उन्होंने दवाइयों और रोगों से मुक्ति दिलाई उसके लिए मैं उनका इतना आभारी हूं कि इस ऋण को अनेक जन्मों में भी शायद ही उतार सकूं।

मैं करीब ८–१० वर्षों से कब्ज, अम्लपित्त, बदहजमी, जुकाम और गठिया आदि वायु के रोगों से पीड़ित रहा करता था। ईश्वर से निरन्तर प्रार्थना करता था कि मुझे इन रोगों से बचावे एवं दवाओं से मुक्ति दिलावे। प्रभु ने मेरी प्रार्थना सुनी और उस संत-महात्मा से भेंट कराई। गांधीनगर के टीबों में उनके शिष्य डा० बंसल जी से मुलाकात हुई और उसके बाद बाबाजी के दर्शन और भेंट हुई।

उन्होंने मुझे उपवास, शाकाहार, फलाहार आदि विधिपूर्वक करा कर मेरे जीवन को उज्ज्वल बनाया। मेरे जीवन में (४० वर्ष की

ायु) में एक अलौकिक और अद्भुत आनन्द का अनुभव था। उपवास
इस छोटे से काल में शरीर और मन को विकारों से रहित कर दिया
ार्थात् मेरे जीवन ने एक नया मोड़ लिया। मुझे प्रकृति माता से उत्पन्न
ए पदार्थों में एक विशेष रस मिलने लगा और आत्मा में ईश्वर की
ाक्ति का अनुभव किया।

आज उनके बताये गये मार्ग पर चल कर अत्यंत सुख का अनुभव
कर रहा हूं। सर्दी, गर्मी, वर्षा आदि में प्रकृति की गोद में अपूर्व आनन्द
का अनुभव कर हृदय से उस संत की आत्मा की शान्ति के लिये प्रभु से
प्रार्थना करता रहता ।

सादर श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं !

—श्री धूलीलाल बोहरा एन० डी० डी० वाई०, सवाई माधोपुर

ओ मृत्युलोक के देवता ! महाप्रयाण से पूर्व हम अश्रुपूरित आश्रितों की भी सुनते जाओ। हमको किसके सुपुर्द किये जा रहे हो ? विज्ञान के नये-नये आविष्कार लोक स्वास्थ्य को जड़ मूल से नष्ट कर रहे हैं। प्राकृतिक-चिकित्सा पर ही आशा है सो हमारी सम्पूर्ण आशा बिना प्रकाश-स्तम्भ के लोप हुई जा रही है।

प्रकृति के उपासक ! आपको स्वर्ग का आह्वान है। वहां भी तथाकथित महान् वैज्ञानिकों ने सादगी से जीवन बिताने वालों को विज्ञान की करामात दिखाकर गुमराह किया है और देवताओं का स्वास्थ्य बिगड़ता देखकर कूने, जुस्ट तथा महात्मा गांधी जैसे प्राकृतिक जीवन प्रेमी महान् व्यक्तियों के परामर्श से आपको स्मरण किया है।

निःस्वार्थ-सफल-चिकित्सक ! हमें वह दिन स्मरण है, जब हमने अपने एकमात्र इकलौते पुत्र की चिकित्सा आपसे कराई थी। अलौकिक, अनुपम चमत्कार था। सुयोग्य वैद्य एवं सुप्रसिद्ध डाक्टरों के हताश होने पर आपकी अमोघ-चिकित्सा-पद्धति ने दम्पत्ति को सन्तान एवं शिशु-शव को प्राण प्रदान किया था। एक के बाद भिन्न-भिन्न अनेक रोग क्राइसिस रूप में निकलते देखा। अद्‌भुत जादू था वह !

आश्चर्यान्वित चिकित्सा के अद्‌भुत चमत्कारी ! गन्धक सेवन । हुए पिता से गर्भाधान होने पर प्राकृतिक-चिकित्सा उपचार से शिशु नदत्त के शरीर के पसीने में गन्धक की गन्ध को कौन समझदार ोगा किन्तु मैंने आपकी पद्धति के अद्‌भुत चमत्कार को आंखों से ा एवं सत्य-रूप से अनुभव किया है। मैं आपके साथ ३ वर्ष रहा, : वर्षों से जानता हूं। इस चमत्कारी प्राकृतिक-चिकित्सा के नाते मैं ापको अपना बन्धु, गुरु एवं सुहृद सखा माने बैठा हूं।

निर्मोही ! इतनी शीघ्रता क्यों ? अमर लोक के निवासी प्राकृतिक जीवन से घिरे हुए अनेक रोगों से ग्रसित हैं। आपका ाह्वान है।

महा-यात्री ! जाओ, स्वर्गलोक आपका स्वागत करने को आतुर : । मृत्यु-लोकवासियों को रोग-मुक्त करके उनके वेदना-मुक्त शुभाशी- ादि से आपको स्वर्गलोक आह्वान करता है एवं महर्षियों को रोग- ुक्त करके उनके हार्दिक शुभाशीर्वाद से आप जीवन-मुक्त होकर ्रामीप्य मोक्ष प्राप्त करेंगे।

मैं, आपके वियोग से मेरा दुःखी परिवार, मेरे नगरवासी रोग-मुक्त व्यक्ति तथा आपके स्वास्थ्य-मार्ग-प्रदर्शन द्वारा प्राकृतिक जीवन विताने वाले मनुष्य सादर, नत-मस्तक, नेत्र-अश्रुपूरित आपको श्रद्धांजलि समर्पित करते हैं।

बाबाजी के सामने मेरी प्रतिज्ञा

—श्री वासुदेव प्रसाद बंसल, एम. ए., एल.

सैंन्ट जोन्स कालेज आगरा की लाइफ में मैं ५ वर्ष तक उ
विकारों से भयंकर रूप से परेशान रहा। कभी कब्ज, कभी आं
कभी गैस, कभी जलन, कभी पेट में दर्द, कभी गुदा पर मरोडा, क
ज्यादा भूख, कभी कम भूख, कभी मीठी डकारें, कभी खट्टी डका
कभी सुस्ती, कभी फुरती, कभी ज्यादा नींद, कभी कम नींद। क
इम्तहान हैं और आज डाक्टर वैद्य के पास जा रहे हैं। कोई वैद
मंदाग्नि (DYSPEPSIA) बतलावे तो कोई संग्रहणी (SPRUE)
कोई डाक्टर अम्ल पित्त बतलावे तो कोई हाइपर एसिडिटी। सभी
तरह का इलाज करवाया पर स्थायी लाभ नहीं हुवा।

धौलपुर (राजस्थान) का निवासी होने के नाते जयपुर के
युनीवर्सिटी लॉ-कालेज में लॉ की पढाई पढने का अवसर मिला
सौभाग्य से लॉ-कालेज के सामने ही प्राकृतिक-चिकित्सालय था अपने
रोग का परामर्श बाबाजी से करने के बाद मैंने चिकित्सालय में प्रवेश
पा लिया। बाबाजी ने मेरे रोग की प्राकृतिक-चिकित्सा ६-२-५८
से आरम्भ की और मुझे मिट्टी, पानी, धूप हवा के साथ-साथ फलाहार,
उपवास, दुग्ध-कल्प व मठा कल्प के द्वारा तीन माह में पूर्ण स्वस्थ
कर दिया।

उस समय परम पूज्य बाबाजी के सामने १३ मई, १९५९ को मैंने प्रतिज्ञा की थी "प्राकृतिक-चिकित्सा ने मुझे जीवन दिया है, मैं प्राकृतिक-चिकित्सा को जीवन दूंगा।"

आज बाबाजी अपने बीच नहीं रहे, पर उनकी अमर-आत्मा को श्रद्धाञ्जली अर्पित करते हुए मैं आप लोगों को यह विश्वास दिलाता हूं कि मुझे अपनी प्रतिज्ञा का पूरा-पूरा ख्याल है और मैं उस पर अटल रहूंगा चाहे मुझे जीवन में कितना ही त्याग और संघर्ष क्यों न करना पड़े।

बाबाजी की बतलाई हुई बातों पर मेरी रिसर्च चालू है। अपनी रिसर्च के दौरान में मुझे बाबाजी से सुनी हुई, लिखी हुई व देखी हुई बातों से बड़ा बल मिलता रहता है। समय आने पर रिसर्च की बातें आप लोगों के सामने प्रस्तुत करूंगा। बाबाजी ने रिसर्च का विषय मुझे दिया था "जल्दी सड़ने वाली चीजें जल्दी हजम होती हैं, रोग पैदा नहीं करती और देर में सड़ने वाली चीजें देर में हजम होती हैं, रोग पैदा करती हैं।

उन्होंने प्रकृति को बहुत नजदीक से देखा था अगर आज वे होते तो उन्हें भारतीय प्राकृतिक-चिकित्सा विद्यापीठ के अन्दर प्रिंसीपल का पद मिलना चाहिये था। ताकि भावी पीढी को वे अपनी अनुभव की बातों को बतलाते जिनका उन्होंने ४० साल में बड़े त्याग और संघर्ष से सच्चाई और गहराई के साथ पता लगाया था। सच्चे रूप में वे जानते थे कि प्राकृतिक-चिकित्सा और प्राकृतिक-जीवन में क्या अन्तर है और आज देश को दोनों की जरूरत क्यों है ?

ईश्वर से प्रार्थना है कि हमें वह ऐसी शक्ति दे जिससे बाब
जैसे महापुरुष की बातों को जीवन में क्रियान्वित करें ताकि हम सु
स्वस्थ और सुडौल बनें तथा दवाओं का सेवन न करना पड़े।

मैं आशा करता हूं कि बाबाजी ने मुझे जो बातें अपने ब
नजदीक से बतलाई थी उन्हें मैं अलग से पुस्तक के रूपमें कभी सम
आने पर प्रकाशित करूंगा।

बाबाजी की बातें और बाबाजी की आत्मा अमर रहे।

[२४]

बाबाजी—एक सफल वक्ता

—श्री घनश्याम अग्रवाल

यह घटना एक अविस्मरणीय संस्मरण बन कर रह गई है। ो भी व्यक्ति उनके सम्पर्क में आया है, उसे यह मालुम है कि प्राकृतिक-त्रकित्सा से सम्बन्धित उनके व्यक्तिगत अनुभव इतने अधिक हैं तथा वे न्हें इतने सरल ढंग से सुनाते हैं कि श्रोता मंत्र-मुग्ध से सुनते रहते । इसके बावजूद भी किसी सभा या मंच पर से उन्हें व्याख्यान देते बहुत ही कम बार देखा गया होगा। उस दिन की बात कि कुछ मेडिकल कॉलेज के छात्र चिकित्सालय में आने वाले थे और बाबाजी को उनके बीच कुछ कहना था। सभी लोग सोच रहे थे कि बाबाजी कैसे व्याख्यान देंगे। यहां तक कि किसी ने मुझसे कहा, मैं मदद करूं। छात्र आये और हम सबके आश्चर्य के बीच, बाबाजी ने जो बोलना शुरू किया, एकदम धारा प्रवाह एक के बाद एक अपने अनुभव, हम देख रहे थे कि सब लड़के, बड़े ध्यान मग्न, अपने कान लगाये हुए थे। मेरी निश्चित धारणा है कि उनका वह प्रवचन किसी भी अन्य डॉक्टर के गूढ़ व्याख्यान से अधिक सरल व प्रभावोत्पादक रहा होगा।

[२५]

युग-युग तक हैं आभारी

—श्री सोमदत्त उपाध्याय, सीनियर केमिस्ट रानावाव (पोर

(१)

हे प्रकृति के महा उपासक,
जन कष्टों के उपचारी।
कहां गये संसार छोड़कर,
बिलख रही दुनियां सारी॥

(२)

निःस्वार्थ भाव निःशुल्क लिये,
करते थे जन-जन की सेवा।
अब कौन निभायेगा इस व्रत को,
चला गया वह व्रतधारी॥

(३)

प्रतिभाशाली महा यशस्वी,
महा-मानव पर क्या गुजरी।
चालीस वर्ष तक रुग्ण रहे,
अरु घेरे रही महामारी॥

(४)

सभी चिकित्सक आये लेकिन,
हुआ असर नहीं रोगों पर।
तभी प्रकृति का लिया सहारा,
भाग गई सब महामारी ॥

(५)

सर्वोदय का सफल सहायक,
त्याग-भाव का था दधीचि।
सत्य-निष्ठ था वृद्ध तपस्वी,
धैर्य रूप था अधिकारी ॥

(६)

इसी प्रकृति की पूर्ण चिकित्सा,
में तन मन धन अर्पित कर।
सर्वस्व रोगियों की सेवा में,
रत रहता करुणा-धारी ॥

(७)

सीमान्त देश के "नौशेरा" में,
बहुत बड़ा था व्यापारी
जन्म-स्थान था श्री माधोपुर,
उम्र वृद्धता थी धारी

(८)

श्रद्धा, करुणा, दया भाव का,
सभ्य जगत का आभूषण ।
हर कण-कण में छोड़ गया है,
यादगार की चिनगारी ॥

(९)

मेरा तन, मन, धन अर्पित है,
किशनलालजी के पद में ।
कोटि-कोटि को स्वस्थ बनाकर,
चला गया वह उपकारी ॥

(१०)

मेरे जीवन दान करन के,
हे ब्रह्मा हे सहयोगी !
सोमदत्त के ये दो आंसू,
युग-युग तक हैं आभारी ॥

तृतीय खण्ड

परिवार वालों की ओर से

पिताजी की छाया में

—श्री मोतीलाल गुप्त, एम० ए०

कहते हैं कि महापुरुष एक उद्देश्य को लेकर आते हैं और उस उद्देश्य की पूर्ति में अपनी समस्त जीवन-शक्ति को लगा देते हैं। जब से पूज्य पिताजी ने पूज्यपाद स्वामी ब्रह्मवेत्तानन्द सरस्वती जी से प्राकृतिक चिकित्सा के मंत्र की दीक्षा ली थी तभी से वे एकाग्र होकर उसी दिशा में लग गये थे। यद्यपि अपने जीवन के अधिकांश काल तक वे व्यापार करते रहे तो भी प्राकृतिक चिकित्सा की जो ज्योति स्वामी जी ने उनके हृदय में प्रज्जवलित की थी—वह ज्यों की त्यों विद्यमान रही जो उन्हें प्रकृति की ओर बराबर उन्मुख करती रही, और उससे उन्होंने न केवल अपना बल्कि मानव-जाति का मार्गदर्शन किया।

मुझे उनका सबसे छोटा पुत्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। ऐसे महापुरुष का जीवन जो आजीवन अपनी मूक साधना से मानव-सेवा में लगा रहा—बहुत ही प्रेरणादायक रोचक एवं उत्साहवर्द्धक हुआ करता है। मुझे उनके सान्निध्य में रहने का अच्छा अवसर मिला—जिसमें मुझे उनके बारे में जानने और समझनें का काफी अवकाश मिला।

प्राकृतिक-चिकित्सा, चिकित्सा नहीं बल्कि जीवन है। जो चिकित्सक प्राकृतिक जीवन व्यतीत करना नहीं जानता वह सही तौर पर प्राकृतिक-चिकित्सा भी नहीं कर सकता क्योंकि इसमें तो रोगी को

जीने की कला सिखानी होती है। मैंने देखा कि पिताजी की चर्या प्रकृतिमय थी। वे बोलते तो प्रकृति की भाषा बोलते थे और तो प्रकृति की गोद में बैठते थे। खाते थे तो प्राकृतिक वस्तुएं करते थे। सोते थे तो मिट्टी के बने एक विशेष प्रकार के बिस्तर उन्मुक्त खुले आकाश के नीचे सोते थे। देखते थे तो प्रकृति का सौ और उसकी रहस्यमयी वस्तुओं को। सोचते थे तो प्रकृति के बारे सोचते थे और प्रकृति के रहस्यों का उद्घाटन करते थे। वे प्रकृति माध्यम से ही सब कुछ देखते थे और उसकी मीमांसा करते थे। प्रकृति से ऐसे ओतप्रोत हो गये थे कि उनका दैनिक जीवन प्रकृति अनुरूप हो गया था।

प्राकृतिक चिकित्सालय, जयपुर उनका प्रमुख साधना-स्थल र जहां बैठकर उन्होंने अपने चिर संचित विचारों को साकार रूप प्रदा किया। उनके जीवन का लक्ष्य था प्राकृतिक-चिकित्सा के संदेश को जन साधारण तक पहुँचाना और उन्हें सच्चे एवं सुगम रास्ते पर अग्रसर करना। इस दिशा में वे बहुत सीमा तक सफल रहे और सहस्त्रों रोगियों को सफलतापूर्वक रोग मुक्त किया। मैं देखता था कि कैसा भी भयंकर रोगी क्यों न हो उसे वे भरती कर लेते थे। उनका कहना था कि रोगी डाक्टर, वैद्यों व हकीमों आदि से परेशान होकर हमारे प आता है तो हमें उसे निराश नहीं करना चाहिए। बीच में चिकित्सा को सरकारी आदेश मिल गये कि वहां यक्ष्मा से पीड़ित रोगि को भरती न किया जाय। एक बार नागौर के एक सज्जन जो यक्ष्म से पीड़ित थे उनके पास आये और भरती होने के लिए निवेदन किया

चिकित्सालय के नियमों के अनुसार उनको भरती करने में असमर्थता प्रकट की गई। जब उन्होंने यह बात सुनी तो कहने लगे, "बाबाजी मैं तो परेशान होकर आपके पास आया था और अब यदि आप मेरी चिकित्सा नहीं करेंगे तो मुझे बहुत ज्यादा निराशा होगी।"–यह सुनकर उनके मन में विद्रोह सा उत्पन्न हो गया और सोचने लगे क्या ऐसे रोगी को यों ही मरने दिया जाय। तुरन्त ही उनको अपना फर्ज और रोगी की दयनीय अवस्था का ख्याल आ गया और उन्होंने कह दिया– "ठीक है यदि आप चिकित्सालय के बाहर कहीं मकान लेकर चिकित्सा ले सकें तो मैं आपका मार्ग-दर्शन करने को तैयार हूँ।" रोगी को और क्या चाहिए था। तुरन्त मकान की व्यवस्था कर ली और चिकित्सा पिताजी की देख-रेख में प्रारम्भ कर दी। कहना न होगा, लगभग चार महीने की चिकित्सा के बाद उस रोगी के शरीर से यक्ष्मा इस कदर भाग गया जैसे वह उस रोगी को कभी हुआ ही नहीं। टी० बी० सेनीटोरियम से जांच करवा कर रोगी ने जब यह शुभ समाचार पिताजी को बतलाया तो उनकी खुशी का ठिकाना न रहा और प्रकृति के अद्भुत किन्तु प्रत्यक्ष चमत्कार का जीता जागता उदाहरण अपने सामने देख कर चकित रह गये। ऐसे एक नहीं सहस्त्रों उदाहरण सामने आ चुके हैं। ऐसी थी उनकी त्रस्त मानव जाति और दुःखियों के प्रति सहानुभूति की भावना!

उनकी देह एक "प्रयोगशाला" थी जिसमें वे छोटे से लेकर बड़े से बड़े प्रयोग कर लेते थे। प्रायः देखा जाता है कि डाक्टर लोग अपने रोगियों पर विभिन्न प्रकार के परीक्षण करके हो किसी निष्कर्ष पर

पहुंचते हैं—ऐसी स्थिति प्रायः रोगियों का अहित होने की संभाव ही बनी रहती है। पर उनके लिए यह सर्वथा विपरीत था। किसी बीमारी में कोई प्रयोग करना हुआ तो पहले उसे अपने शरीर आजमा कर ही दूसरों के लिए निर्धारित करते थे। संयोगवश वे अप प्रारम्भिक अवस्था काल में इतने बीमार रहे कि ऐसा कोई रोग न ब होगा जो उनको न हुआ हो। इसीलिए उनको बहुत से प्रयोग अप शरीर पर करने का अवसर मिला। इसके अलावा समूचे परिवार रोग इस कदर घर कर गये थे कि जिनका निकलना असम्भव प्रतीत हं रहा था। लेकिन उनकी इस साधना की बदौलत आज पूरा परिवा पूर्ण रूपेण स्वस्थ है। कभी कभी वे कहा करते थे "परिवार वाले मेरे गुरू हैं।' यह सुनकर मुझे विस्मय होता और मैं जिज्ञासा वश पूछता "पिताजी यह कैसे ?" इस पर वे कहते "मुझे नये-नये परीक्षण करने का अवसर अपने परिवार वालों के शरीर पर मिला और प्रत्येक बार मुझे प्रकृति के नये चमत्कार देखने को मिले।" मैं देखता था कि कभी र अपने शरीर पर प्रयोग करते करते उनको कुछ तकलीफ भी उठानी पड़ती थी और फलस्वरूप ोमार भी हो जाया करते थे। मैं कह देता "पिताजी आप इस आयु में क्यों तरह तरह के प्रयोग करके इतना कष्ट उठाते हैं" तो उनका यहां सहज उत्तर होता "यदि अपने शरीर पर प्रयोग न किया जाय तो वस्तु का असली प्रभाव समझ में नहीं आता।" यही कारण था कि वे व्यवहारिक अधिक थे। जो कुछ उनके प्रयोग मं खरा उतरा उसे ही उन्होंने जीवन में अपनाया था। वे बार बार यह प्रयोग करके देख चुके थे कि खरबूजा जिसे लोग हैजे का घर मानते हैं, बहुत ही लाभदायक वस्तु है। इस दिशा में उनका विश्वास इतना दृढ़

स्त हो गया था कि वे हैजे की चिकित्सा भी खरबूजा खिला कर ही करते थे। एक तरफ शहर में हैजा फैला हुआ है तो दूसरी ओर वे अपने रोगियों को खरबूजा खिला रहे हैं और रोगी ठीक हो रहे हैं। ऐसा वही कर सकता है जो परीक्षण कर करके स्वानुभव द्वारा किसी निष्कर्ष पर पहुँचा हो। प्रयोग वे इतने करते थे कि अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी आंवले पर विभिन्न प्रयोग कर रहे थे—और इस दिशा में उन्होंने बहुतसी महत्वपूर्ण चीजें हांसिल कर ली थी।

उनका आत्म-विश्वास बहुत ऊंचे दर्जे का था। धुन के इतने पक्के थे कि जब एक बार औषधियों का त्याग कर दिया तो वह सदैव के लिए हो गया। बड़े से बडे कहलाने वाले रोग के सामने भी उनकी आंखों से भय एवं भीरुता का भाव नहीं झलकता था बल्कि वे सदैव आशावादी रहते थे। मैंने कभी उनके मुख से यह नहीं सुना कि अमुक रोग प्राकृतिक चिकित्सा से दूर नहीं हो सकता। जब कभी मैं उनके अविचल साहस एवं विश्वास द्वारा स्वस्थ किये गये सहस्त्रों रोगियों को देखता हूं तो मुझे लगता है कि आत्म-विश्वास एवं दृढ़-आस्था का सम्बल लेकर वे रोग-समर-क्षेत्र में कूद पड़े थे। उनका विश्वास जैसा कि वे कहा करते थे, उनकी शक्ति को दुगना कर देता था और प्रत्येक जटिल समस्या का हल उनकी आंखों के सामने नाचने लगता था। उनको आत्म-प्रेरणा का अनुभव होता था जिसके बल पर वे भयंकर से भयंकर स्थिति में भी घबराते नहीं थे। प्रकृति पर उनकी आस्था इतनी अटूट थी कि जो भी व्यक्ति एक बार उनके सम्पर्क में आ गया वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहता था।

वे प्रकृति में इतने ओत-प्रोत हो गये थे कि कहा कर "मुझे प्रतिदिन प्रकृति के नये संदेश मालुम होते हैं और प्रकृति मेरा मार्ग-दर्शन करती है। मैं तो प्रकृति का एक माध्यम मात्र रोगी को तो पंच तत्व अच्छा करते हैं, मैं तो केवल उनका उपयोग बतला देता हूँ।"

कृत्रिमता उनकी परिधि से बाहर की वस्तु थी। उनका जी अत्यन्त सरल था और विचार इतने सुलझे हुये कि कठिन से कठि समस्या का समाधान सरल एवं रोचक भाषा में कर देते थे।

वे शारीरिक चिकित्सा के साथ-साथ आत्मिक एवं मानसि चिकित्सा पर भी बल देते थे। उनके उपचार में प्रार्थना का ए महत्वपूर्ण स्थान था। यही कारण था कि दोनों समय प्रार्थना करन आवश्यक बतलाते थे। रामनाम की महिमा को वे भलीभांति समझते थे।

प्रकृति के इस उपासक का अन्त बहुत हो शान्त तरीके से हुआ जो उनके जाते-जाते भी एक नया सन्देश छोड़ गया। अपने मरण के दो दिन पहले ही उन्होंने कह दिया था कि 'अब प्रभु की ओर से मुझे रहने की इजाजत नहीं है इसलिये मुझे जाना है और आज सब लोगों को मेरे जाने की तैयारी करनी है। तैयारी में यही करना कि मुझे जब भी मैं मागूं मेरे मुंह में केवल गङ्गाजल ही डालना। मेरे लिये अब औषधि गङ्गाजल है और वैद्य नारायण है।' ऐसा कहकर वे लेट गये और रामनाम का उच्चारण प्रारम्भ कर दिया जो उनके अन्तिम श्वास तक बराबर चलता रहा। इन शब्दों में कितने

ार्मिकता, कितना रहस्य और कितना ज्ञान था! गङ्गाजल से उन्हें ावन में विशेष मोह रहा क्योंकि गङ्गाजल के प्रयोग से उन्होंने ेखा था कि मरते-मरते रोगी को भी चेतनता आ जाती है। यहीं तक हीं वरन् वे तो गङ्गा की मिट्टी भी रोगियों को चिकित्सा-काल में खाने ो देते थे।

जब उनकी स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई तो मैंने ाहस बटोर कर कहा—"पिताजी यदि आज्ञा हो तो किसी अच्छे डॉक्टर को बुला कर दिखाया जाय।" उन्होंने साफ इन्कार कर दिया और कहा—"देखो, यदि मैं चैतन्य अवस्था में भी न रहूं तो भी मुझे दवा मत देना—मेरे जीवन की तपस्या को अन्तिम समय में दवा देकर भंग मत करना। कहीं मेरा शरीर अपवित्र न हो जाय। जब मुझ से बोला नहीं जाय तो भी मेरे मुंह में गङ्गाजल चम्मच से डालते रहना।" इतना आदेश देकर वे पुनः रामनाम का उच्चारण करने लगे। तपस्या की कितनी कठोर पराकाष्ठा थी वह! प्रायः देखा गया है कि मृत्यु का भय सबको लगता है परन्तु ज्यों-ज्यों उनका अन्त निकट आ रहा था त्यों-त्यों वे अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे और कह रहे थे—"मुझे अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा है और प्रभु के दर्शन हो रहे हैं।" ऐसा सुखद अवसर भाग्यशालियों को ही नसीब होता है। आखिर १२ अप्रैल, ६४ को दिन के १ बजे वे ब्रह्म में लीन हो गये और जैसे पका हुआ फल वृक्ष से धीरे से अलग हो जाता है और वृक्ष को भान भी नहीं हो पाता कि कब और कैसे वह फल उससे अलग हो गया उसी प्रकार उनके प्राण-पखेरु भी उड़ गये।

ऐसे थे पिताजी ! ऐसी आत्मा की छाया में कुछ समय रहने
सौभाग्य मिला—यही काफी है। जब-जब मुझे उनका स्मरण हो आ
है तो उनकी सरल, शान्त मूर्ति एवं उनसे सम्बन्धित अनेकों घटन
मेरे मस्तिष्क के परदे पर चल-चित्र की भाँति नाचने लगती हैं औ
मुझे लगता है कि मैं उनके निकट बैठा उनके उपदेशों को सुन रहा ह
आज भी उनके सुपरिचित शब्द 'औषधि जहर है', 'सच्चा इलाज प्रकृ
करती है' आदि कानों में गूंज जाते हैं।

[२]

प्रातःस्मरणीय बाबाजी

—श्री भंवरलाल गुप्त, बी. ई.

मुझे अपने बाबाजी से सबसे अधिक प्रेरणा उनके नियमित जीवन से मिलती रही है। सोकर उठने से लेकर वापस निद्रादेवी की गोदमें जाने तक का उनका सारा कार्यक्रम पूर्ण व्यवस्थित होता था। समय पर उठना, शौचादि से निवृत्त होना एवं प्रार्थना, घूमना, खाना-पीना एवं अन्य सारे दैनिक कार्यों का ऐसा क्रम होता था जो स्वयं में एक आकर्षण केन्द्र था। प्रत्येक कार्य—चाहे वह छोटा हो या बड़ा—उनकी नजर में महत्व रखता था।

दूसरी सबसे ग्राह्य बात जो मुझे उनमें लगी वह थी—उनकी परीक्षणात्मक दृष्टि। उनकी प्रयोगशाला थी सर्वप्रथम उनका स्वयं का शरीर व फिर उनका परिवार। जो बात पकड़ में आई उसका पीछा तब तक नहीं छोड़ना जब तक उसके हिज्जे करके अपने पर परीक्षण करके पूरी समझ नहीं लेना। इसी कारण कई मर्तबा तो परिवारवाले व अन्य लोग भी उन्हें सनकी कह देते परंतु मुझे याद नहीं कि अंतमें बाबाजी का लोहा उन लोगों ने न माना हो ... जी को तो सफलता-असफलता से कोई हर्ष-विषाद ही नहीं। उन्होंने तो एक ही दृष्टि रखी कि जब जो सत्य पकड़ में आया तबही उससे चिपकजाना व आगे बढ़ने का मार्ग खोजना शुरु कर देना।

ऐसे प्रातःस्मरणीय बाबाजी के चरणों में बारम्बार प्रणाम है।

[३]

बाबा की स्मृति में

—श्री बाबूलाल

मेरे बाबा मेहनत से धन कमाकर अपने घर का र करते थे। घर का अधिकांश भार उन्हीं के कंधों पर था। उपस्थिति में परिवार के सब सदस्य निश्चिंत थे। अपने अन्तिम तक उनकी छत्र-छाया में हम अपने आपको ऐसा महसूस करते जीवन तो एक क्रीड़ास्थल है जहां आनन्द ही आनन्द है—चिं कोई बात नहीं। अब लगता है कि जीवन में कुछ उतार भी चढ़ाव भी जहां हमें संभल-संभल कर सावधानी-पूर्वक आगे होगा जिसके लिए पूज्य बाबा की आत्मा से हमें सदा प्रकाश रहेगा, पर चलना हमें ही पड़ेगा।

मेरे बाबा में क्या था यह पूछने की बजाय क्या नहीं पूछना अधिक ठीक होगा। उनमें साहस था, प्यार था, मस्त आनन्द था, उत्साह था, मितव्ययिता थी और सबसे बढ़कर थी- प्राप्ति की तीव्र उत्कण्ठा। उनके जीवन का एक भी प्रसंग याद है तो बाबा मेरे मन में छा जाते हैं।

एकबार मेरी दादीजी के दिमाग में पत्थर के कोयलों की भर गई जिस कारण उनकी स्थिति बड़ी ही चिन्ताजनक हो गई उनके बचने की भी आशा नहीं थी। डॉक्टर, वैद्य भी उनका इ

नहीं कर सके। सब हिम्मत हार गये परन्तु बाबा ने कहा, "किसी को घबराने की आवश्यकता नहीं है। सका उपचार अब मैं करूंगा"। उन्होंने दादीजी के कानों में कहा 'ओम् तत्सत्' का उच्चारण करो और कुछ जल आदि की चिकित्सा भी की। थोड़ी ही देर में दादीजी की हालत ठीक होनी शुरू हो गई और हम सब देखते ही रह गए। इसी प्रकार हम सब घरवालों के ऊपर उन्होंने अपनी चिकित्सा-पद्धति के जो आश्चर्य-जनक प्रयोग किए उनका स्मरण आते ही अब भी हम दंग रह जाते हैं।

बाबाजी वृद्ध होते हुए भी हम लोगों से खूब मनोरंजन करते थे। उनका व्यवहार घर के सभी सदस्यों के प्रति एकसा था। वो मुझे अक्सर कहा करते थे, 'बेटा श्रेष्ठ जीवन व्यतीत करने का पहला सूत्र है सुन्दर स्वास्थ्य, दूसरा चरित्र, तीसरा समय का सदुपयोग एवं चौथा मितव्ययिता।'

मैं मेरे परिवार के सभी सदस्यों एवं उनके सम्पर्क में आए हुए प्रत्येक भाई-बहिन से प्रार्थना करता हूं कि वो सब बाबाजी के जीवन के आदर्शों का अनुकरण करके अपना जीवन तदनुसार बनावें इसीमें मारा, हमारे राष्ट्र का तथा जगत् का कल्याण है।

बाबाजी—एक प्रेरणा स्रोत

—श्री रामनाथ

मेरी धर्म-पत्नी शान्तिदेवी की बीमारी ने मुझे बरबस आ
तीन वर्ष पूर्व एक ऐसी रोशनी की ओर उन्मुख कर दिया—जो
मेरे जीवन का प्रेरणा-स्रोत बन गई है और पग-पग पर मार्ग द
करती है। बाबाजी जैसे महापुरुष और उनके विचारों के प्रति आक
होना मेरे लिये परम सौभाग्य की बात थी।

बात सन् १९६२ की है। अपनी पत्नी की बीमारी के सिलसि
में सब ओर से निराश हो चुका था और मुझे उसके जीने की कोई आ
न रही थी। वे जो भी कुछ खातीं उन्हें हजम नहीं होता था अ
स्थिति यहां तक पहुंच चुकी थी कि यदि वे पानी भी पीतीं तो उस
भी कै होजाया करती थी। मैं इसी उधेड़ बुन में था कि अब कौन
चिकित्सा-पद्धति अपनाई जाय जिससे इनको राहत मिल सके। दैवयो
से मुझे एक सज्जन से सम्पर्क हुआ जिन्होंने मेरे मनमें प्राकृतिक-चिकित्स
के प्रति आकर्षण पैदा की और दिलासा दिलाई कि प्राकृतिक-जीवन
चर्या से रोग का शमन सदैव के लिये हो सकता है। उन्होंने यह भ
बतलाया कि 'अच्छा हो यदि आप मेरे गुरू जिनसे मैंने इस मन्त्र क
दीक्षा ली है उनके मार्ग-दर्शन में इनको रक्खें।' वे गुरू और कोई नहं
डॉक्टर साहब श्री किशनलालजी ही थे जो उन दिनों श्रीमाधोपुर रह

करते थे। मैं तुरन्त अपनी पत्नी को लेकर श्रीमाधोपुर चला गया और उनकी चिकित्सा करने के लिये निवेदन किया। बाबाजी जैसे सहृदय व्यक्ति ने मुझे धैर्य बंधाया और यह विश्वास दिलाया कि प्रकृति अवश्य ही उन्हें रोग मुक्त करेगी।

फलस्वरूप चिकित्सा आरम्भ हुई और शनैः शनैः लाभ प्रतीत होने लगा। मैंने उनसे निवेदन किया कि आप जयपुर चलकर चिकित्सा करें तो और भी उत्तम हो। लेकिन उनके लिये शहर में रहना सम्भव नहीं था इसलिये अलग से एक अच्छी सी जगह चुनली गई जो उनको पसंद भी आगई थी।

यहाँ मैं यह भी बतला देना चाहता हूं कि बाबाजी ने मुझको अपना चौथा पुत्र मान लिया था। मैंने एकबार उनसे निवेदन किया "बाबाजी मेरे पिताजी का स्वर्गवास हो गया है और घर का कार्यभार देखने वाला मैं अकेला ही व्यक्ति हूं। अतः मुझे भी आप अपना चौथा पुत्र मान लें।" उन्होंने कुछ सोचा और मुस्कराते हुये अपनी स्वीकृति प्रदान करदी। तबसे उनका स्नेह मुझ पर अपने पुत्रों से भी अधिक होने लगा और मैं उनके परिवार का सदस्य बन गया।

पितृ-तुल्य बाबाजी ने मुझे एक ज्ञान दिया, एक रोशनी दी। सहीमाने में यदि देखा जाय तो उन्होंने मुझे जीना, खाना, रहना, पहनना-सभी कुछ सिखाया। पग-पग पर वे मेरा मार्ग-दर्शन करते रहे। मैंने जो कुछ उनके सम्पर्क में आकर सीखा—वह मुझे कहीं भी नहीं मिलता और आज उनके उपदेश मेरी एक अमूल्य निधि बन गई है।

उनका मरते समय का आशीर्वाद यही रहा, 'बेटा मेरे दिल में तुम्हारे प्रति एक आशा बाकी रही है जिसकी मुझको प्रेरणा है कि ईश्वर अवश्य ही पूरा करेगा।' इससे स्पष्ट है कि बाबाजी यदि २-४ साल भी और जीवित रहते तो हमारा जीवन अधिक सुखमय हो जाता। यह तो हुई हमारे साथ उनके व्यवहार की बात किन्तु उनके सम्पर्क मे जो भी आया वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रहा।

विशाल अनुभव, सहृदयता, परिपक्व निर्णय, विषय की सरस मीमांसा, सादगी, धैर्य, अटूट-निष्ठा इन सब का उनमें गजब का समन्वय था। उनकी दिनचर्या ही इस प्रकार की थी कि उसमें कृत्रिमता की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। वे सही अर्थों में प्रकृति के भक्त थे। वे प्रकृति को आत्मसात् कर चुके थे और उनके लिये सब कुछ प्रकृतिमय बन गया था।

उन महापुरुष के बारे में मैं जो कुछ भी लिखूं—वही थोड़ा है। आज उनका अभाव अत्यन्त खल रहा है जिसकी पूर्ति होना सम्भव प्रतीत नहीं होता। लेकिन इसी में संतोष किये बैठा हूं कि जितने समय भी मैं उनके सम्पर्क में रहा—उससे मैं धन्य हो गया। उनके कमलों में मैं इन शब्दों के साथ अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करत

---

[५]

प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि......।

—श्री लालचन्द्र अग्रवाल, जयपुर

किसी भी वस्तु या व्यक्ति का सही मूल्य तभी मालुम होता है ाह या तो खो जाती है अथवा उसका लोप हो जाता है। ठीक प्रकार पिताजी का अभाव आज हम परिवार जनों को ही नहीं उनके सम्पर्क में आए समस्त प्राकृतिक चिकित्सा प्रेमियों को रहा है।

वह जो कहते थे वही करते थे। प्राकृतिक-चिकित्सा के जिस का वे प्रचार करते थे उसी के अनुसार जीवन-यापन भी करते वे सदा अपने ज्ञान को क्रियान्वित करने में लगे रहते थे और कहा थे कि 'प्रत्येक रोगी जिसकी मैं चिकित्सा करता हूं कुछ न कुछ देकर ही जाता है। उनसे मेरा ज्ञान भंड़ार बढ़ता है एवं परिपक्व ा है। मुझे नए-नए अनुभव प्राप्त होते हैं।'

मेरे जीवन को सबसे अधिक प्रेरणा पूज्य पिताजी के जीवन की तम-झांकी के प्रेरणास्पद प्रसंग से मिलती रहेगी। उस सारे प्रसंग कैसे लिपिवद्ध करूं समझ में नहीं आता। शायद वह लिपिबद्ध की नहीं जा सकती। आज के जन-जीवन में मुझे ईश्वर-भक्ति, प्रभु- न, नाम-स्मरण आदि के प्रति एक उपेक्षा एवं तिरस्कार का भाव ने को मिलता है। परन्तु हनुमानजी की तरह प्रभु मुझे अपना हृदय

चीरकर दिखाने की शक्ति दें तो लोगों को शायद ये शब्द लिखे
कि 'प्रभु जो अनुभूति मेरे पूज्य पिताजी को तूने अन्तिम समय में
वह यदि मुझे वर्तमान में करादे तो क्या बिगड़ जायगा ? तेरे लि
खेल है पर मेरे लिए शायद सर्वस्व हो, मानव-जीवन का परम
हो।' पिताजी के ये अन्तिम वचन मेरे कानों में गूंजते रहते हैं—

'मैं ईश्वर-स्मरण करना चाहता हूं पर कर नहीं पाता जैसा
तुलसीदासजी ने कहा है—

जनम-जनम मुनि जतन कराहीं।
अंत राम कहि आवत नाहीं ।।' अस्

मेरे पिताजी के जीवन सम्बन्धी अनुभवों एवं उनके जीवन-क
के आश्चर्यजनक प्रसंगों को–जो समय-समय पर उनके अपने शरीर
परिवार एवं अन्य उनके सम्पर्क में आने वाले भाई-बहनों के साथ घ
लिपिबद्ध करने बैठूं तो शायद एक विशालग्रंथ तैयार हो जाय, पर
वह सब यहां अप्रासंगिक होगा। मेरा मानना है कि उनके लिपिब
करने की आवश्यकता नहीं। उनका उद्घाटन तो प्रत्येक क्षण किस
भी मानव के जीवन में होता रह सकता है जो उनके जीवन सम्बन्ध
अनुभवों का लाभ उठाकर प्रकृति-देवी की गोद में अग्रसर होने का
बीड़ा उठाले।

प्रभु से प्रार्थना करता हूं कि वह हम सबको उनके अनुभवागार
से प्रेरणा लेकर आगे बढ़ने की शक्ति दे।

———

चतुर्थ खण्ड

बाबाजी एवं प्राकृतिक जीवन पद्धति

(स्व० डॉ० किशनलालजी के प्राकृतिक जीवन सम्बन्धी समय-समय पर लिखे हुए एवं उनकी अनन्य भक्त श्रीमती चन्द्रकलाजी मित्तल एम. ए. के बाबाजी के सान्निध्य में प्राप्त स्वानुभव सम्बन्धी लेख)

[१]

अमृतफल खरबूजे द्वारा कायाकल्प

—श्री किशनलाल अग्रवाल

आजकल खरबूजा बाजार में खूब जोरशोर के साथ आ रहा है ौर सस्ता भी काफी है, परन्तु खाने वाले इससे इतना डरते हैं, जितना कसी और फल से नहीं। उनकी धारणा है कि खरबूजा हैजे का घर है ौर गर्म भी बहुत है। कई तो ऐसे व्यक्ति मुझे मिले हैं जिनका कहना कि खाना तो दूर, हम छूते तक नहीं। कितनी उत्तम, पवित्र, स्वा-ष्ट और अमृततुल्य वस्तु है जो प्रकृति ने पैदा की है, उस ईश्वरीय न से लोग भ्रम में पड़ कर वंचित रह जाते हैं। यह सब अनजानों की हरबानी है कि उन्होंने इस विषय में एक भ्रान्त धारणा पैदा करदी । दरअसल इसमें वास्तविकता तो यह है कि निरन्तर औषधियों या जहरीले इन्जेक्शनों के प्रयोग से रोग शरीर में जमा होते रहते हैं ौर परिणाम यह होता है कि पेट अनेकानेक व्याधियों का भंडार बन ाता है। जब कभी हम खरबूजा खाते हैं तो वह एकत्रित रोग एकदम ाहर निकलने लगते हैं और इस प्रकार शरीर की शुद्धि होने लगती , जिसे हम हैजे की संज्ञा देते हैं। हैजा मनुष्य का शत्रु नहीं, बल्कि मत्र बन कर आता है। हैजा तो सफाई का एक कुदरती रास्ता है जससे वर्षों का काम घंटों में हो जाता है, परन्तु गलत उपचार से त्यु हो जाती है। प्रकृति बड़ी दयालु है, कभी गलती नहीं करती।

हैजे के कई केस मेरे अनुभव में आये हैं, जिनमें एक की भी मृत्यु नः
हुई और उनके शरीर की इतनी जल्दी सफाई हुई जो कि महीनों त
प्राकृतिक चिकित्सा करने से भी नहीं हो सकती। मैंने हैजे के रोगिय
की केवल खरबूजा ही खिला कर सफल चिकित्सा की है।

प्रकृति ने खरबूजे को ऐसे समय में पैदा किया है जब खूब गर्म
और लू होती है। इसे इस ऋतु में खाने से किसी तरह का भी रो
शरीर में नहीं रह सकता। खासकर संग्रहणी और आंव के रोगियों के
लिए तो यह एक अद्वितीय वस्तु है। मैंने स्वयं अपने शरीर पर और
सैंकड़ों अन्य व्यक्तियों पर अनुभव करके इसे देख लिया है। मुझे एक
भी रोगी ऐसा नहीं मिला जिसने इससे लाभ न उठाया हो। मैं तो उन
व्यक्तियों को दुर्भाग्यशाली कहूंगा जो डर कर इसके लाभ से वंचित रह
जाते हैं।

खरबूजा खाने का तरीका इस प्रकार है: पहले दो या तीन दिन
का उपवास करें। उपवासकाल में नींबू व पानी पीते रहें, साथ ही साथ
एनिमा भी लेवें। कटि-स्नान भी अगर सुविधा हो तो अच्छा है। खूब
भूख लगने पर खरबूजे का प्रयोग शुरू करना चाहिए। पहले दिन चार
बार में दो-ढ़ाई सेर खरबूजा लेवें, फिर प्रतिदिन अपनी इच्छानुसार
उसकी मात्रा बढ़ाते रहें। यहां तक कि पन्द्रह-सोलह सेर तक प्रतिदिन
खरबूजे खाये जा सकते हैं। मेरे पास तो ऐसे रोगी आकर रह चुके हैं
जिन्होंने प्रतिदिन बीस सेर तक खरबूजा खाया है। बेधड़क होकर
खरबूजे का प्रयोग करना चाहिए। प्रायः खरबूजा-कल्प के दौरान में कई
व्यक्तियों को कब्ज हो जाया करता है तो उसके लिए सादे गुनगुने

ानी का एनिमा ले लेना चाहिए। वरना सबसे अच्छा तो यह होगा कि ोड़ा छिलके-सहित खरबूजा खा लिया जाय, इससे पेट की अच्छी तरह फाई हो जाती है और कब्ज भी नहीं रहता। प्रायः वृद्ध लोगों के दांत होने से छिलके नहीं खाये जाते तो उसके लिए छिलकों को सुखा कर और उसका चूर्ण बना कर प्रयोग करना चाहिए। छिलकों में कई ऐसे क्षार तत्व भी होते हैं जिनसे कि बहुत से रोग अच्छे हो जाते हैं। मैं तो आजकल लोगों को खरबूजा खाने की सलाह देता हूं, क्योंकि इसमें ऐसे गुण विद्यमान हैं जो संतरा, मौसमी, अंगूर आदि महंगे फलों में नहीं मिलते। देहातों में महंगे फल उपलब्ध भी नहीं होते परन्तु खरबूजा तो सब जगह ही मिल जाता है। लखनऊ, काबुल, क्वेटा, टौंक आदि स्थानों पर तो ऐसे मीठे खरबूजे मिलते हैं जिनकी प्रशंसा खाने वाला ही कर सकता है। जहां तक हो सके जब तक सीजन हो तब तक खरबूजे खाते रहना चाहिए। यदि कई दिनों तक इसके खाने से मन भर जाय, तो इसके साथ अन्य फल भी लिये जा सकते हैं, परन्तु एक बात ध्यान देने की यह है कि आजकल खरबूजे में चीनी डाल कर 'पना' बनाने की जो प्रथा चल पड़ी है वह बिल्कुल गलत है। यदि हम इसके असली गुण और स्वाभाविक मिठास का आनन्द लेना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि उसका रूप विकृत न कर उसे अपनी प्राकृतिक दशा में ही खाया जाय।

मेरे पास इस समय अपने चिकित्सालय में जितने भी रोगी हैं मैं उन सबको पथ्य में खरबूजा ही दे रहा हूं, जिनके परिणाम बहुत अच्छे निकले हैं। इस समय यहां पर ऐसे भी वृद्ध रोगी हैं जो दांत न होने के कारण खरबूजे को चबा कर नहीं खा सकते। उनके लिए एक ऐसी

लोहे की चद्दर की खुरची (घीयाकस की तरह) बनादी गई है जिसमें एक लोहे की कील से छोटे छोटे छेद कर दिये गये हैं। उस पर खरबूजे को रगड़ने से बहुत अच्छा शर्बत बन जाता है, जो कि सर्वोत्तम पेय है।

खरबूजे से एक नहीं अनेकों रोग ठीक हो जाते हैं। इसके खाने से मूत्र-नलिकाएं खूब साफ हो जाती हैं और गुर्दे सम्बन्धी रोग भी दूर हो जाते हैं। खरबूजे में पानी की मात्रा बहुत ज्यादा होती है। पाठकों से निवेदन है कि वे दयालु प्रकृति की इस देन का उपयोग करें और फिर देखें कि इससे कितना लाभ प्राप्त होता है !

(स्वस्थ-जीवन, जून १६५६ से साभार)

[२]

प्राकृतिक चिकित्सा में हाथ-पिसे आटे का महत्व

—डॉ० किशनलाल अग्रवाल

विज्ञान का उदय मनुष्य की सहायता के लिए हुआ था, जिससे क वह अपने जीवन को ठीक ढंग से चला सके। परन्तु उचित संतुलन ; अभाव में विज्ञान का विकास स्वयं मनुष्य के जीवन पर ही आक्रमण करने लग गया है। इसका एक बहुत छोटा सा उदाहरण हम यहां दे रहे हैं, परन्तु उससे यह सिद्ध होगा कि हमारे चिन्तन की धारा कितनी उल्टी दिशा में बह रही है और उसके परिणाम स्वरूप हम करोब-करीव आत्म-हत्या के निकट पहुँच गये हैं।

भारतवर्ष के हर घर में हमारे भोजन का सबसे अधिक प्रमुख और स्थूल पदार्थ आटा है, चाहे वह गेहूँ का हो बाजरे, चने, जौ या अन्य किसी अन्न का। देश के एक सिरे से दूसरे सिरे तक घूम आइये, आदिवासी क्षेत्रों को छोड़कर प्रायः सभी सभ्य माने जाने वाले क्षेत्रों में यह आटा मशीन से पीसा जाता है; कहीं तो यह मशीन बिजली से चलती है, कहीं तेल से, कहीं भाप से और कहीं पानी के तीव्र प्रवाह के वेग से। इसी देश में एक वह जमाना था, जब घर में पत्थर की छोटी-बड़ी चक्कियां होती थी और हर सवेरे गांव के हर घर में चक्की की मधुर गंजन के साथ गृहणियों का उससे भी मधुर संगीत सुनाई देता था।

वह जैसे एक बीते युग की बात हो गई है। चारों ओर मशीन के आटे का राज्य महामारी की तरह से प्रसारित हो चुका है।

सामान्यतः लोग मिल पिसे और हाथ पिसे आटे का अन्तर समझ पाते। हमने कई ऐसे लोगों को देखा है जो वैज्ञानिक प्राकृ चिकित्सक होने का दावा करते हैं और कहते हैं कि मिल का आ यदि मोटा पिसा हो तो कोई हानि नहीं है। उनका दोष नहीं है; वैज्ञानिक अज्ञान के जमाने में सभ्यता की कसौटी ही यह है कि आ यंत्र के अत्याचार को सहते जाइये, वरना आपको दकियानूसी (पुरा पंथी) कहकर आपकी उपेक्षा की जायेगी।

यहां हम कहना चाहते हैं कि आटे के प्रश्न को हमें तीन दृष्टि से देखना होगा। पहली दृष्टि है सर्वोदय विचार की, जिसके एक अंग रूप में प्राकृतिक चिकित्सा प्रतिष्ठित हुई है। दूसरी दृष्टि आहार-शास्त्र की है जो प्राकृतिक चिकित्सा का मूल आधार है और तीसरी दृष्टि शरीर विज्ञान की है, जो हमें यह बताता है कि मनुष्य के शरीर के विविध अंग और तत्व किस प्रकार शक्ति संचय करते हैं।

सबसे पहले हम यह समझ लें कि प्राकृतिक चिकित्सा आज के भारत को महात्मा गांधी की देन है। यह चिकित्सा पद्धति उनके बताए विकेन्द्रित समाज में ही पनप सकेगी, जिसमें मनुष्य और पशु शक्ति के अलावा दूसरी शक्तियों का प्रयोग भोजन-वस्त्र की आवश्यकताओं की पूर्ति में नहीं होगा। आटे की मिलें किसी भी दृष्टि से सर्वोदय समाज का अंग नहीं हो सकतीं।

आहार-शास्त्र की दृष्टि से हाथ-पिसे आटे का बड़ा महत्व है। हमारे देशवासियों का संकल्प है–जिजीविषेत् शतं समाः—हम सौ वर्ष जियेंगे ; वे जो भी अन्न खाते हैं उसकी शक्ति को यदि नष्ट कर देंगे तो कभी भी उनका संकल्प पूरा नहीं होगा। मिलों में गेहूँ की स्निग्धता और उसका विटामिन 'ई' प्रायः नष्ट हो जाता है, क्योंकि प्रायः छोटी मिलों में ही आटा पीसने वाला पत्थर एक मिनिट में चार सौ चक्कर लगाता है, जब कि हाथ की चक्की एक मिनिट में सिर्फ तीस चक्कर लगाती है। अतः मिल की चक्की से गिरते हुए आटे की बोरी में यदि तुरंत हाथ डाल दिया जाए तो वह जल जाएगा, फफोले पड़ जायेंगे, उस आटे को फैलाकर ठंडा करना पड़ता है।

विटामिन 'ई' मनुष्य की देह में रज और वीर्य की पुष्टि करता है। यह बात ध्यान देने की है कि विटामिन 'ई' गेहूँ के भीतर के तेल में रहता है। इस तेल के जल जाने पर गेहूं वैसे ही बेकार हो जाते हैं जैसे कि पानी उतर जाने पर मोती। इस तेल को बनाए रखने के लिए गेहूं की पिसाई में गर्मी नहीं पैदा होनी चाहिए। जन्म से ही रोगी और दुर्बल सन्तान यदि पैदा होती है तो समझ लीजिए कि यह उस सभ्यता का प्रताप है, जिसमें आलस्य का देवता हमें मिल का आटा खाने वाली प्रेरणा देता है। मिल-पिसा आटा खाने वाली स्त्रियां 'ई' विटामिन से वंचित रहकर श्वेत-प्रदर और पुरुष धातुक्षीणता की ओर धीरे-धीरे अग्रसर होते हैं। मिलपिसा आटा खाना निर्जीव खाने जैसा है। सारहीन भोजन से सुखी जीवन की आशा करना मृगतृष्णा है। जान्स युनिवर्सिटी के डाक्टर मेकालम ने सिद्ध किया है कि मिलवाला गेहूं के कण

के ४० तत्वों में से ३० नष्ट कर देता है। कितना महान् अन्तर है में भी जमीन-आसमान का अन्तर होता है। उसी गेहूं को म और हाथ चक्की से पीस कर दोनों का एक एक निवाला खाया तो अन्तर स्पष्ट मालूम हो जाए। तब तो मनुष्य मशीन का आटा भी मूल्य पर नहीं खाएगा।

आहार-शास्त्र में रस और स्वाद का भी बड़ा महत्व है। और स्वाद की दृष्टि से हाथ पिसा आटा सर्वोत्तम होता है। च सहित हाथ पिसा आटा सेल्यूलोज युक्त होता है, तो अंतड़ियों को के भार से बचाता है तथा अत्यन्त स्वादिष्ट और मधुर होता है, उ खाने से मिल-पिसे आटे की रोटी से अत्यन्त अरुचि होती है। हाथ-ि आटा तृप्तिदायक और स्वादिष्ट होता है, अतः वह मात्रा में मिल-ि निर्जीव भूसे जैसे आटे की अपेक्षा कम खाया जाता है, अधिक श देता है और चोकर भी उसमें नष्ट नहीं जाता। यह स्मरण रहे कि चोक में ही विटामिनों का निवास होता है, उसे कभी नहीं फेंकना चाहिए राष्ट्रीय अर्थशास्त्र की दृष्टि से हाथ पिसा आटा हमें अन्न-संकट से बचा में सहायक होगा।

शरीर-विज्ञान की दृष्टि से एक बात समझ लेनी चाहिए कि मानव शरीर के जिस अंग से काम नहीं लिया जाएगा वह बेकार हो जाएगा। शरीर के हर अंग को व्यायाम मिलना चाहिए। राष्ट्रीय दृष्टि से हमारा व्यायाम उत्पादक भी होना चाहिए। ऐसा सर्वश्रेष्ठ व्यायाम हाथ चक्की से आटा पीसना है। देश के प्रसिद्ध सर्वोदय सेवक और विचारक श्री सिद्धराज ढड्ढा एक बार हमारे चिकित्सालय में चिकित्सा

लिए ठहरे और मुझसे उत्पादक परिश्रम पूछने लगे। मैंने कहा कि
की पीसो। चक्की पीसना अत्यन्त लाभदायक और उत्पादक राष्ट्रीय
ायाम है।

एक बार प्रसिद्ध सर्वोदय विचारक श्री जवाहिरलाल जैन ने मुझे
हा कि जयपुर जैसे नगर में हाथ पिसा आटा मिलना दुर्लभ है। मैंने
हा कि जिस प्रकार गांधी जी ने चर्खे को स्वयं कात कर प्रतिष्ठित
ार प्रचारित किया और आज जयपुर नगर में मिनिस्टरों की कोठियों
भी उसका सामयिक स्वर गुंजित होता है उसी प्रकार चक्की को भी
तिष्ठित कीजिए। गांधीजी चरखा कातने लगे तो एक हवा फैल
ई—"गांधीजी रेंटियो काते छे।" मैं चाहता हूं कि लोग देखें और
हें, "सिद्धराजजी चक्की पीसे छे।"

अन्त में अपनी सत्तर वर्ष की आयु के भरेपूरे अनुभव के बाद,
ादव्यास की भांति हाथ उठाकर, संसार से कहना चाहता हूँ कि स्वाद,
ेजस्विता, अक्षय-यौवन, शोषण-मुक्त समाज और शत वर्ष का जीवन
ाप्त करना चाहते हो तो चक्की अपने हाथ से पीसकर चोकर समेत,
मोटा आटा खाइये। जिजीविषेत् शतं समाः (सौवर्ष जियें) कहने से
पहिले ऋषि ने कहा है—"कुर्वेन्नेदेह कर्माणि" कर्म करते हुए। हमारी
यह प्रार्थना हो—

करते हुए ही कर्म इस संसार में
शत् वर्ष का जीवन हमारा इष्ट हो।

चक्की पीसो और स्वस्थ रहो।

(स्वस्थ जीवन जुलाई १९५९ से साभार)

[३]

यक्ष्मा की नैसर्गिक चिकित्सा

—डॉ० किशनलाल अग्रव

राजरोग यक्ष्मा असाध्य माने जाने वाले रोगों में गिना जा है। प्राय: देखा जाता है कि जिसे यह रोग हो जाता है वह तो समझिये एक प्रकार से जीवन से निराश ही हो जाता है। रोग से रो की चिन्ता अधिक भयंकर होती है। ऐसे रोगी प्राय: भाग्यवादी ब जाते हैं; परन्तु, कभी-कभी आशाकी एक किरण ही उनके जीवन आमूल परिवर्तन कर देती है। यहाँ हम एक ऐसे रोगी की गाथा सु रहे हैं जो लगातार चार वर्षों से यक्ष्मा से पीड़ित रहकर जीवन से तथ आधुनिक रोग-निवारण के साधनों से निराश होकर प्रकृति की शरण आया और प्राकृतिक आहार-विहार तथा रहन-सहन ने उसके जीवन क्रान्ति मचा दी। उसे अपनी खोई हुई निधि—अक्षय यौवन, अदम उत्साह और अपूर्व तेजस्विता प्राप्त हुई। कहने की बात नहीं कि रोग अप्राकृतिक भोजन तथा गलत रहन-सहन से होता है। रोग के लक्षणों को औषधियों द्वारा दबाये जाने का प्रयत्न किया जाता है, परन्तु इस बात की ओर तनिक भी ध्यान नहीं जाता कि आखिर रोग होने का कारण क्या है? फलस्वरूप रोगी भयंकर रोगों जैसे कैंसर, यक्ष्मा आदि असाध्य माने जाने वाले रोगों का शिकार बन जाता है। यह सत्य श्री तुलसीरामजी के विषय मे भी पूरी तरह खरा उतरा।

बात सन् १९५१ की है। नवम्बर का महीना बीत रहा था। ८ नवम्बर को श्री तुलसीरामजी अग्रवाल मेरे चिकित्सालय में आये ौर भरती होने की राय जाहिर की। मैं समझ गया कि उन्हें फिर कुछ ड़बड़ हो गई। एक बात यहाँ बता देना उचित समझता हूं कि इनकी वकित्सा मैंने श्री माधोपुर में सन् १९५० में भी की थी। कुछ माह की चकित्सा से उन्हें लाभ तो प्रतीत हुआ, परन्तु रोग पूरी तरह नहीं मटा। खैर, अब पुनः रोग का आक्रमण हुआ। मन में अविरल आशा ौर अटल विश्वास लिये वे मेरे पास पहुंचे। जिस प्रकार शिशु मां की ोद में आकर निर्भय हो जाता है, उसी प्रकार श्री तुलसीराम को भी नपने आपको प्रकृति मां के सिपुर्द करने में तनिक भी देर नहीं लगी— योंकि वे पहले से ही इस मन्त्र की दीक्षा लिये हुए थे।

रोगी की चिकित्सा

चिकित्सा आरम्भ हुई। उनकी हालत दुर्बल थी तथा वजन भी ९४ पौंड से अधिक नहीं था। आते ही उन्हें मिट्टी की पट्टी तथा १० मिनट का कटिस्नान दिया गया। आहार में रोटी न देकर फल व तरकारियां ही दीं। तीन रोज तक उनका क्रम इसी प्रकार चला। फिर प्रातः काल सूर्योदय से पहले लगभग चार-पांच बजे डॉ० जुस्ट के कथनानुसार कभी प्राकृतिक स्नान तथा कभी प्रकाश एवं वायु स्नान भी दिया जाने लगा। प्राकृतिक स्नान लेते वक्त एक टब में चार अंगुल ठंडा पानी डालकर इस प्रकार बैठा जाता है कि नितम्ब पानी में डूब जाय। फिर उस जल को एक हाथ से करीब तीन मिनट तक पेड़ पर डालकर पेड़ू स्नान किया जाता है। तत्पश्चात् मल एवं मूत्रद्वार तथा बीच की

सीवन को दो-तीन मिनट तक धोया जाता है। फिर सारे बदन स्नान कर हवा में हाथ से मालिश की जाती है, ताकि बदन सूख जा यह सब कुछ करने में उन्हें लगभग पन्द्रह-सोलह मिनट लगते थे। छा को गीली पट्टी उन्हें प्रतिदिन दी जाती थी। कभीं-कभी प्रातः मे स्नान दस मिनट का और शाम को कटिस्नान ८ मिनट का दिया जा था। उनका तापमान जो सदैव ही लगभग १००°-१०१° बना रह था—धीरे-धीरे मिटने लगा। खांसी भी शनैः शनैः कम होती गई।

कुछ दिनों तक आहार में रोगी को अधिकतर फल व सब्जि दी जाती थीं। साथ में कभी-कभी एक दो नींबू भी चलते थे। फल ए तरकारियां वे काफी तादाद में लेने लगे। पाचन-क्रिया में सुधार होत नजर आने लगा। भूख खुलकर लगने लगी, पाखाना दोनों समय सा होने लगा तथा रोगी का रंग निखर आया। अस्तु, रोग के शरीर क शुद्धि हो गई। इतना सब कुछ उन्हें लगभग १॥ महीने की चिकित्सा से हुआ।

दुग्ध-कल्प

अब मुझे यह आवश्यकता प्रतीत हुई कि इन्हें एक अच्छा सा दुग्ध-कल्प करा दिया जाय। अतः एक टाइम का उपवास कराकर दूध पिलाना प्रारम्भ कर दिया। पहले दिन गाय का दो सेर दूध सुबह-शाम तथा थोड़े फल दोपहर को दिये गये। फिर शनैः शनैः दूध की मात्रा बढ़ाई जाने लगी और फल कम कर दिये गये। लगभग पन्द्रह दिन बीते होंगे कि दूध की मात्रा सात सेर तक पहुंच गई। जब पांच सेर

ध उनके पेट में जाने लगा तभी से उनके वजन में प्रगति होने लगी। रन्तु जब दूध की मात्रा सात सेर प्रतिदिन तक पहुंची तब एक पौंड जन रोज बढ़ने लगा। दिनांक १८-२-५२ को रोगी का तौल लिया या—अब वजन ११५ पौंड था। शरीर में काफी प्रगति हो चुकी थी। ाब रोगी, रोगी नहीं था—वह तो पूर्ण स्वस्थ हो गया था। यहां यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि पहले रोगी के शरीर से एक प्रकार की ांध आया करती थी—अब वह बिल्कुल नहीं रही। ज्वर व खांसी ाता नहीं शरीर से कब निकल भागे!

अब रोगी के दूध की मात्रा कम करके उसे साधारण दैनिक आहार पर लाना था। दिनांक १९ फरवरी को दिन में कुल मिलाकर चार सेर दूध तथा दोपहर में चौलाई मिली मोटे आटे की एक रोटी और उबली हुई तरकारी दी गई। इसके उपरान्त वे दिन में दो-ढाई रोटी और लगभग तीन सेर दूध सुबह-शाम में मिलाकर लेने लगे। कुछ दिनों बाद उन्होंने दोनों टाइम खाना शुरू कर दिया, दूध भी लगभग एक सेर दोनों समय का मिलाकर ले लेते थे।

श्री तुलसीरामजी अब पूर्ण स्वस्थ तथा प्रसन्न थे। मन में प्रकृति के प्रति दृढ़ आस्था तथा चेहरे पर रक्तिम आभा लिए वे घर लौटे। जाते वक्त उनके मुख से जो उद्गार निकले उन्हें हम नीचे दे रहे हैं—

"मैं करीब चार साल से बुखार, खांसी (यक्ष्मा) से बीमार रहा। यहां तीन माह की चिकित्सा कराने के पश्चात् पूर्ण स्वस्थ होकर

घर जा रहा हूँ। मेरा वजन भी ६४ पौंड से बढ़कर ११५ पौंड हो गा है। मुझ को इस चिकित्सा पद्धति में अटूट श्रद्धा हो गई है और ईश्व से प्रार्थना है कि हमारी सरकार का इस ओर ध्यान आकर्षित हो जिससे प्राकृतिक-चिकित्सा का प्रचार हो और सर्वसाधारण ला उठा सकें।"

(स्वस्थ जीवन, अक्टूबर १९५९ से साभार)

[४]

स्वानुभवकी कसौटी पर

धूम्रपान से हानियां और मुक्ति के उपाय

—डा० किशनलाल अग्रवाल

आज देखते क्या हैं कि तम्बाकू का सेवन तो महामारी की तरह समाज में व्याप्त हो रहा है। एक युग था जब समाज में इस प्रकार के मादक द्रव्यों का सेवन करना अपराध माना जाता था और उसके लिये दण्ड-व्यवस्था भी थी। लेकिन आज परिस्थिति विपरीत है। दुनियां के समस्त क्षेत्रों में घूम आइये, तम्बाकू का प्रयोग तो आपको हर जगह किसी न किसी रूप में अवश्य ही मिलेगा। कोई इसे बीड़ी, सिगरेट, हुक्का आदि में प्रयोग करते हैं तो कोई पान में डालकर अथवा सूंघकर इसका सेवन करते हैं। यह बात यहां तक सीमित ही नहीं, बल्कि इसमें लोग सुल्फा तथा गांजा आदि नशीले द्रव्य मिलाकर भी इसका पान करते हैं। पंजाब में केवल सिक्खों का ही एक छोटा-सा इलाज बचा है, जो धूम्रपान नहीं करता और यही कारण है कि वे लोग प्रायः बलिष्ठ तथा साहसी होते हैं।

मैं अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में धूम्रपान का शिकार था, परन्तु जबसे मैं प्राकृतिक चिकित्सा के क्षेत्र में आया तबसे मुझे इससे घृणा हो गई और विवश होकर इसे छोड़ना पड़ा। बात सन् १९२६ की है। एक रात को दस बजे जब मैं सोने लगा तो सदा की भांति सिगरेट पीनी चाही। कैंची छाप सिगरेट की डिबिया मेरे पलङ्ग पर

हमेशा ही रखी रहती थी और मैं उस पूरी डिबिया को प्रायः एक रा
में ही फूंक दिया करता था। जब मैं पीने लगा तो गले में ठसका ल
तथा जलन महसूस हुई। बार-बार पीने का प्रयास करने पर भी उ
रात एक भी सिगरेट नहीं पी पाया। सोचा, शायद यह कैंची क
सिगरेट नहीं होगी, परन्तु जब ध्यानपूर्वक देखा तो मालूम पड़ा कि य
तो वही कैंची की सिगरेट है। सोचने लगा कि इससे पहले जब कभ
मैंने इसका प्रयोग किया तो यह इतनी साफ लगती थी कि मैं चाहे
जितने जोर से क्यों नहीं खींचता, गले में जलन बिल्कुल ही नहीं हुआ
करती थी। प्रातः काल उठा तो मेरा हाथ अनायास ही लुई कूने की
The new sciencc of Healing पर पड़ा। दैवयोग से तम्बाखू
वाला प्रकरण सामने आया तो मुझे मालूम पड़ा कि प्रकृति ने तम्बाखू
मनुष्य के लिये नहीं बनाई है। यही कारण है कि प्रकृति ने गले तथा
मुंह में जलन और कड़वेपन के रूप में अंग-रक्षकों की योजना की है जो
इसकी विषैली धुआं को अन्दर जाने से रोकने का अपनी मूक वाणी से
संकेत करते हैं। इसी कारण बच्चे तम्बाखू नहीं पीते।

तम्बाखू के दुष्परिणाम

तम्बाखू के भीतर जो निकोटीन होता है उसमें एक प्रकार का
विष होता है। जब कोई भी व्यक्ति धूम्रपान करता है, तो सर्व प्रथम
आमाशय उसका प्रतिरोध करता है। परन्तु जब पीने वाला इस पर
भी अपनी आदत को नहीं छोड़ता और इसका आदी हो जाता है तो
आमाशय का प्रतिरोध करना निर्बल से निर्बल अवस्था को पहुंच जाता
है। इसके अतिरिक्त जो धुआं फेफड़ों में जाता है, उसका प्रभाव केवल
वहीं पर सीमित नहीं होता, बल्कि उसका विष रक्त द्वारा समस्त शरीर

ं व्याप्त हो जाता है और इस प्रकार हम जाने-अनजाने अपने शरीर
र अत्याचार करते रहते हैं। फलस्वरूप शरीर भयंकर व्याधियों का
शिकार हो जाता है। मैंने देखा है कि यदि सांप के मुंह पर तम्बाखू की
थोड़ी-सी मात्रा डाल दी जाय, तो उसकी तुरन्त मृत्यु हो जाती है और
यदि मानव शरीर की त्वचा पर इसको रगड़ दिया जाय, तो जलन-सी
महसूस होने लग जाती है। परीक्षणों के बाद यह बात सिद्ध हो चुकी
है कि तम्बाखू के लगातार प्रयोग से कैंसर, यक्ष्मा आदि भयङ्कर रोग
उत्पन्न हो जाते हैं।

मुक्ति के उपाय

धूम्रपान छोड़ना उतना मुश्किल नहीं जितना कि समझा जाता
है। जिस दिन आप छोड़ना चाहें उसी दिन मनमें संकल्प करें कि आज
धूम्रपान छोड़ना है। उस दिन पूरा उपवास रखें तथा दिनमें लगभग
तीन-चार सेर पानी पीवें। सुबह तथा शाम दोनों वक्त १०–१० मिनट
का कटिस्नान लेवें तथा एनिमा लेकर पेट साफ कर लें। जब कभी
आपकी धूम्रपान करने की इच्छा हो उसी वक्त दो-तीन घूंट ताजे ठण्डे
पानी को पीवें। एक-दो दिन तक फलाहार कर फिर अन्न पर आ
जावें। आहार में मोटे आटे का ही सेवन होना चाहिये। इस तरीके से
मैंने अनेक व्यक्तियों को इस आदत से मुक्त करवा दिया है। मेरे पास
कई रोगी तो ऐसे आये, जो लगभग २०–२५ साल से तम्बाखू का सेवन
कर रहे थे और उन्होंने केवल दो ही दिन में धूम्रपान जैसी आदत से
सदा के लिए छुटकारा पा लिया। आज ही आप इस उपाय का प्रयोग
करके तो देखिये, किस प्रकार आप इससे मुक्त हो जाते हैं!

(स्वस्थ जीवन, नवम्बर १६५६ से साभार)

[५]

मोतीझरा और प्राकृतिक चिकित्सा

—डॉ० किशनलाल अग्रवाल

जब मैं सीमाप्रांत में था तो मेरा पौत्र चि० ओमप्रकाश, जो उस समय ढाई साल का था, ज्वर से पीड़ित हुआ। पांच-सात दिन तक ज्वर नहीं उतरा तो मालुम पड़ा कि उसे तो मियादी बुखार (typhoid) है। तापमान लगभग १०३॥°-१०४° बना रहता था। दिसम्बर का महीना चल रहा था। ज्वर तीव्र होने से जब कभी उसे बेहोशी आती तो उसे छत पर ले जाकर ठंडी हवा का स्नान दिया जाता और फिर तापमान कम हो जाने पर नीचे कमरे में लाया जाता था। एक दिन अचानक ही भीमसेनजी हकीम ने (जिनकी लड़की कृष्णलीला, उम्र १६ साल जो हड्डी के क्षय से पीड़ित थी, की सफल चिकित्सा की थी आभार प्रदर्शित करते हुए मुझसे चि० ओमप्रकाश की बीमारी में कुछ सहायता देने की प्रबल कामना की और मेरी स्वीकृति मिल जाने पर वे रात को मेरे घर आकर सोये। आधी रात बीती होगी कि उसे ज्वर बहुत तेज हो गया। मैंने कमरे की तमाम खिड़कियां खोल दीं। यह देख कर हकीम जी नाराज होते हुए बोले, "आप यह विपरीत काम क्यों कर रहे हैं?" उन्होंने तुरन्त ही सब खिड़कियां बन्द करवादीं और बच्चे को रजाई से ढंक दिया। अब तो ज्वर और भी तेज हो गया। तापमान नापा गया—१०६° निकला। बच्चे की यह हालत देखकर

ीम जी घबराये और अपना निर्णय देते हुए बोले, "अब तो इस च्चे के जीने की आशा नहीं है, आपको जो कुछ करना हो सो शीघ्र र लीजिए।" हकीमजी के इस निर्णय को सुनकर मैं पहले तो घबराया रन्तु बाद में थोड़े साहस के साथ बच्चे को नंगा करके उसके सिरहाने ाली खिड़की को खोल दिया। थोड़ी देर बाद ज्वर कम होकर १०३° ह गया, श्वांस गति भी कम हो गई तथा तड़फड़ाना भी मिट गया। रन्तु हकीम जी को खिड़की खुलने से मारे सर्दी के सारी रात नींद हीं आई और सिरदर्द होगया। प्रातः उठे तो देखा कि उन्हें तो जुकाम ो होगया है। फिर मुझसे क्षमा मांगते हुए उन्होंने आने में असमर्थता कट की और घर चले गये।

चिन्ताजनक हालत

मैंने स्वयं भी इससे पहले इतने लम्बे समय वाला मोतीझरे का ऐसा भयंकर रोगी कभी नहीं देखा था। दिल में घबराहट होनी तो स्वाभाविक थी परन्तु प्रकृति पर श्रद्धा और विश्वास की जड़ें मेरे दिल में अधिक मजबूत थीं। मैं जानता था कि रोग शरीर शुद्धि का एक क्रान्तिकारी कार्य है और मुझे विचार आया कि इस हालत में रोगी को प्रकृति पर सर्वांशतः समर्पित कर देना चाहिए। अस्तु, ओमप्रकाश को प्रारम्भ से ही औषधियों, इन्जेक्शनों आदि से दूर ही रक्खा गया। बच्चा जो कि पहले हृष्ट-पुष्ट था दिन-प्रति-दिन दुर्बल होने लगा। सप्ताह, पखवाड़ा और यहां तक कि महीना बीत चला—तापमान वही १०३° के लगभग बना रहा। दिन में तीन-चार बार टट्टी और पेशाब लग जाते थे। दो-तीन गिलास पानी ले लेता था। इस हालत में जब ५० दिन

निकल गये तो उसे टट्टी तथा पेशाब भी बन्द होगये तथा पानी भी कर दिया। खाना-पीना (रस आदि) तो पहले से ही नहीं दिय रहा था, क्योंकि रोगी को भूख ही नहीं थी। जब उसने पानी पीना छोड़ दिया तो मैंने अब उसके जीने की आशा छोड़दी और देखने कि ऐसे समय में प्रकृति क्या और कैसे सहायता करती है।

इसी प्रसंग में यहां यह बताना भी उचित है कि एक रात जब ज्वर ऊंचा होगया था तो मैंने उसे नंगा करके छत पर ले जा ठंडी हवा का स्नान दिया। बातों ही बातों में समय का ध्यान नहीं रह बच्चा आवश्यकता से अधिक ठंडा हो गया। नब्ज देखी तो मैं गिन नहीं सका। बच्चा चिल्लाने लगा। तब मैंने डर से एकदम उसे रजा उढ़ाते हुए नीचे कमरे में लाकर सुला दिया तथा उसके पास बैठा रहा थोड़ी देर बाद उसका शरीर गर्म हुआ तथा नब्ज की गति भी पहले से कम चलने लगी। अब मुझे मालूम पड़ा कि बच्चे को आवश्यकता से अधिक ठंडी हवा लग गई थी।

रोगी की हालत दिन प्रतिदिन गंभीर एवं चिन्ताजनक होती जा रही थी। बच्चा चारपाई पर लेटा रहता था, आँखें प्रायः बन्द ही रहती थीं। केवल श्वांस-प्रश्वांस ही चल रहा था। रोगी की ऐसी हालत देख कर मैं दिन या रात में जब कभी समय पाता उसके पास बैठा उसे देखता ही रहता। प्रतिदिन उसकी हालत पहले वाले दिन से गिरती ही जा रही थी अर्थात् दुर्बलता आती जा रही थी। उसे बिना खाये-पीये तथा टट्टी पेशाब गये आज ३० दिन हो चुके थे। जब से वह रोगी हुआ था तब से अब तक पूरे ८० दिन व्यतीत हो गये थे। बच्चा इतना सूख गया था कि बिस्तरे में केवल उसकी हड्डियां ही शेष रह गई थीं। शरीर की

त्वचा का रंग काला हो गया था। एक प्रमुख बात जो देखने में आई वह यह थी कि बच्चे के मुंह में एक प्रकार का चिकना सा सफेद पाउडर जैसा मैल भर गया, जिससे दांत चिपक गये। फलस्वरूप मुंह बन्द हो गया था। मैंने अनुमान लगाया मानों मेरे लिये यह प्रकृति का संकेत था कि बच्चे को खाने के रूप में कुछ भी नहीं दिया जाय और बच्चे की भी खाने की इच्छा नहीं थी क्योंकि उसके शरीर से विजातीय द्रव्य अभी तक पूर्णतया निकल नहीं पाया था। अस्तु, बड़ी चिन्ताजनक होगई थी उसकी वह हालत।

रोगी की हालत को देखकर मैंने अनुमान लगाया कि वह तो इतना सूख चुका है कि अब आगे और सूखने की गुंजाइश भी नहीं है। श्वांस की गति भी पहले से दिन प्रतिदिन कम ही होती जा रही थी। इस हालत में तापमान भी कम होने लगा था। अब मैंने समझ लिया कि सूखने की अधिक गुंजाइश न होने से वह कल तक तो अवश्य ही मर जायेगा। मैं प्रकृति के विश्वास पर दृढ़ था और देख रहा था कि वह इस हालत में भी क्या कर सकती है। ईश्वर ने अपने घर के लड़के पर ऐसा परीक्षण करने का अवसर दिया है वरना दूसरी जगह तो इतना कभी नहीं कर पाता और करने भी कौन देता।

आशा की झलक

अब ८२वें दिन की प्रातः हुई। प्रतिदिन की भांति प्रातःकाल उठ कर बच्चे को देखता तो इस ख्याल में था कि आज तो वह मरा हुआ ही मिलेगा। परन्तु हुआ विपरीत। आज वह कल की अपेक्षा ताजा नजर आया। मैंने देखा कि यह कैसा चमत्कार है कि बच्चा कल

की अपेक्षा अच्छा है। मैं हैरान था कि इतने दिन तक बिना खाये-पी
उसका चेहरा आज कैसे चमक रहा है! मुझे तो वह बात याद आ ग
कि जिस प्रकार चैत्र के महिने में वृक्ष बिना पानी के ही हरे होने ल
जाते हैं उसी प्रकार ओमप्रकाश भी बिना खाये-पीये इतने दिनों बा
आज ताजा नजर आया। मैंने अपने लड़के लालचन्द को बुला कर कह
अब तो ओमप्रकाश बच जायेगा। मुंह में गूंद के समान जो चिकन
मैल भर गया था अब उसे निकालने की कोशिश की गई। गीले कपड़े
से धीरे-धीरे मैल निकाला। पानी पिलाया जाता तो वापिस आ जात
क्योंकि आगे गला तो रुका हुआ था। काफी प्रयत्न करने पर मुश्किल से
एक चम्मच पानी की अन्दर गई जो कि पहले जाती ही नहीं थी। मुझे
बहुत खुशी हुई और इस तरह लगभग आधा पाव पानी पिला दिया।
दो घंटे बाद ही आज ३२ दिनों के रुके रोगी को प्रथमबार पेशाब हुआ।
उसकी आंखें साफ की गईं तथा उसे गोद में लेकर पीठ की सूखी मालिश
की। फिर गाय के दूध में आधा पानी मिला कर थोड़ा-थोड़ा पिलाया
गया—ऐसा दिन में कई बार किया। तीसरे रोज बच्चे ने धीमी आवाज
से पानी मांगा। इधर-उधर सिर हिलाना, हाथ-पैर उठाना तथा करवट
लेना भी जारी हो गया। प्रकृति की महिमा विचित्र है। बच्चे में धीरे-
धीरे शक्ति आने लगी। फल, साग तथा दूध पथ्य में लेने लगा। आज
१०० वां दिन था। चि० ओमप्रकाश लंगड़ाता हुआ चलने लगा। कान
का बहरापन हट गया तथा आंखों की ज्योति भी ठीक होने लगी।
उसके शरीर की पूर्णतया शुद्धि हो चुकी थी और अब वह उत्तरोत्तर
स्वस्थ होता जा रहा था। उसे पूर्ण स्वस्थ होने में लगभग एक महीना
और लगा। दूध काफी मात्रा में दिया जाता था एवं साथ में फल भी

चलते थे। आगे चलकर वह धीरे-धीरे अन्न पर आ गया एवं उसका शरीर पहले से बलवान् हो गया। आज वह पूर्ण स्वस्थ है एवं अपनी १८ साल की आयु में अपने भाइयों में सबसे बलवान तथा साहसी है। उस दिन के बाद वह आज तक कभी भी बीमार नहीं पड़ा।

चि० ओमप्रकाश को देखकर जब कभी मुझे उसकी बीमारी वाली हालत याद आती है तो मेरे सामने प्राकृतिक चिकित्सा की महिमा का जीता-जागता एक स्थूल और प्रत्यक्ष प्रमाण मौजूद हो जाता है। धन्य है प्रकृति तेरे विचित्र चमत्कार!

(स्वस्थ-जीवन, दिसम्बर १९५९ से साभार)

[६]

मलेरिया और उसकी चिकित्सा का स्वानुभव

—श्रीमती चन्द्रकला मित्तल, एम.

ईश्वर की सृष्टि में कुछ दुर्लभ नहीं है। महात्मा ईसा ने क
है—'खटखटाओ और द्वार खुल जायेगा'। आचार्य विनोबा कहते हैं
'मांगो और तुम्हें मिलेगा'। कुछ ठीक ऐसी ही घटना इस बार मे
साथ भी घटी। अजमेर से मैं अपने पति, श्री नेमिशरण मित्तल के सा
जयपुर के लिए जब चली, तो अनायास ही मेरे मुंह से निकल पड़ा कि
इस बार ईश्वर कोई ऐसी सूरत बना दे कि जिससे प्राकृतिक चिकित्स
लय जयपुर के डाक्टर किशनलालजी के पास रहने का सुयोग प्राप्त ह
जाय। कहने को तो मैं यह कह बैठी, परन्तु मेरा कलेजा तुरन्त किसी
अशुभ आशंका से बैठने लगा। नेमिशरणजी ने बस इतना ही कहा
"भगवान् भक्तों की मनोकामना पूर्ण करते हैं।" मेरे मनमें यही उथल-
पुथल रही कि डाक्टर के यहां रहना तो आखिर किसी के बीमार होने
पर ही सम्भव है, जो मैं कभी भी नहीं चाह सकती।

हम दिल्ली एक्सप्रेस से जयपुर पहुंच गये, और अपने मुकाम पर
जा कर रुके। नेमिशरणजी अपने क्रमानुसार, गांधी अध्ययन केन्द्र की
ओर चले गये, और मैं बच्चों की सम्भाल में लग गई। थोड़ी ही देर
बाद क्या देखती हूं, कि वह बड़ी तेजी से लपके हुए चले आ रहे हैं।
माथे पर परेशानी जाहिर थी। पास आकर बोले, "ईश्वर ने तुम्हारी

कामना पूरी कर दी—सामान बांधकर तैयार हो जाओ, चलना " मेरे मुंह से आवाज नहीं निकल रही थी, और वह कह रहे थे—ाबूजी (यानी मेरे पितानी–श्री रघुवरदयाल गोयल) बीकानेर से यहां सी काम से आये थे, यहां आकर बीमार हो गये है, अभी उनसे फोन बात हुई है—मलेरिया है, ज्वर आज १०४ डिग्री तक गया है। अब हें लेकर प्राकृतिक चिकित्सालय चलना है।"

सामान पैक करके, हम लोग बाबूजी से मिलने चल दिये, और हां से गांधीनगर पहुंचे। श्री किशनलालजी को फोन पर सूचना करके नकी अनुमति प्राप्त करली गई थी। जाते ही सहज-सुलभ सज्जनता ौर प्रेम के साथ उन्होंने हमें सम्भाल लिया। शाम का समय था, ज्वर उतर चुका था, रोगी को ठण्डे जल से पूर्ण-स्नान, और तदुपरान्त कटि-नान दिया गया और विश्राम की सलाह।

यह १० जून की घटना है। अगले दिन सबेरे प्रार्थना के बाद सब रोगी अपना-अपना चिकित्सा-कार्ड लेकर बैठ गये और श्री किशन-लालजी, जो प्राकृतिक-चिकित्सालय, गांधीनगर के वृद्ध चिकित्सक हैं, एक-एक रोगी की कथा बड़े ध्यान से सुनकर उपचार के सम्बन्ध में उसका मार्ग-दर्शन करने लगे। इस प्रकार जब सब रोगियों को देखा जा चुका तो डाक्टर साहब ने गोयलजी को देखा।

रोग ही चिकित्सा है

डाक्टर साहब बाबूजी की नाड़ी-परीक्षा कर रहे थे, तभी मैं बोल उठी, 'बाबूजी को कई वर्षो से बार-बार मलेरिया होता आ रहा है

और हर बार कुनैन लेनी पड़ी है, जिसके परिणामस्वरूप पीलिया पीड़ा मलेरिया के बाद भोगनी पड़ती है। पूर्ण चिकित्सा की मान तैयारी रखकर हम लोग यहां आये हैं, अतः अब आप उस दृष्टि सोचिये।"

मेरे यह शब्द सुनकर डाक्टर साहब गम्भीर होकर बोले, "दे मुझसे बुखार उतारने के लिए कभी मत कहना, मैं तो प्रकृति का भरो रखता हूं। जब उसे लगेगा कि शरीर शुद्धि की जो क्रिया उसने ज्व के द्वारा चालू की है, पूरी हो गई है, तो वह स्वयं ही ज्वर को उत देगी। ज्वर शत्रु नहीं, मित्र बनकर आया है, उसके प्रति ऐसी भाव रक्खो। हो सकता है, कि ज्वर बहुत ऊंचा जाये, उस स्थिति में सौम उपचार हम अवश्य करेंगे, परन्तु हमें घबराना नहीं है। वही हमा प्रकृति के प्रति निष्ठा की कसौटी होगी। डाक्टर मैं नहीं हूं, मैंने न य शरीर बनाया है, न मैं इसको कायम रख सकता हूं। शरीर का निर्मा प्रकृति ने किया है, हमने अपनी जड़ता और जिह्वा-लोलुपता के व होकर उसमें खराबी पैदा की है। अब ज्वर आया है तो इसका अ यह है कि प्रकृति ने शरीर की मरम्मत और तन्दुरुस्ती का काम अपने हाथ में ले लिया है। असली डाक्टर तो प्रकृति ही है। हम तो उसकी कार्य-पद्धति की पहचान कर, उसकी क्रियाओं में सौम्य मदद पहुंचाने की चेष्टा भर करते हैं। इसलिए प्राकृतिक उपचार करने का अर्थ है- प्रकृति के हाथों में और उसकी इच्छा पर शरीर को छोड़ देना। आत्म-समर्पण की यह कला जिन्हें मालुम नहीं है, और उसका आनन्द जिन्होंने नहीं लिया है, वे ऐसा समझते हैं कि प्राकृतिक चिकित्सा नी

ारी-दूसरी पद्धतियों की तरह, चिकित्सा की एक प्रणाली है. जिसमें ग और चिकित्सा दो भिन्न वस्तुएं हैं।"

बाबूजी यह सब कुछ सुन रहे थे। वह तो पहले से ही इस मंत्र । दीक्षा लिए हुए हैं, अतः बिना किसी बाधा या मानसिक शंका के पचार आरम्भ हुआ। डाक्टर साहब ने फिर कहा—"प्राकृतिक चकित्सा में नीबू का उपयोग अंतड़ियों की सफाई के लिये बहुत महत्व-र्ण हैं, मैं चाहता हूँ कि नीबू के रस के अलावा उसका छिलका भी पेट ं जाना चाहिये।"

छिलका न खाया जा सकता है. न वह अंतड़ियों की दृष्टि से खाना ठीक ही है, अतः नमक के पानी में डाले हुए लूनिया नीबू बाजार से मंगाये गये, और दिन में दो बार चार-चार करके रोगी को खिलाये गये। पानी के साथ ताजा नीबू के छिलकों को काफी देर तक पानी में उबाल कर भाप-स्नान दिया गया। भाप-स्नान से पहले पेडू पर ठण्डी मिट्टी की पट्टी और भाप-स्नान के तुरन्त बाद मटकी के ठण्डे जल का पूर्ण स्नान और उसी क्रम में कटि-स्नान दिया गया। इसी चिकित्सा के करते-करते, लगभग सवेरे दस बजे का समय हो गया। स्नान के लगभग एक घण्टा बाद, छाछ दी गई। आज के भोजन में दो-तीन बार छाछ ही दी गई। आज ज्वर नहीं हुआ। शाम के समय भी मिट्टी की पट्टी, पूर्ण स्नान और ठण्डा कटि-स्नान दिया गया। इस समय थोड़ा खरबूजा भी खिलाया गया।

१२ जून पिछले दिन की भांति ही उपचार दिया गया। छाछ भी दी गई। इस दिन १० जून की अपेक्षा ज्वर के लक्षण एक घण्टा

पूर्व प्रगट हो गये । ठण्ड खूब लगी और ज्वर १०५ डिग्री से कुछ ऊपर गया । बेचैनी बहुत अधिक रही, पेशाब कई बार आया, कमजोरी इतनी थी कि उठना सम्भव नहीं था, अतः पेशाब खाट पर लेटे-लेटे ही कराया गया । चार-पांच घण्टे बाद ज्वर उकर गया, और डाक्टर साहब ने स्वयं बाबूजी को मटकी के ठण्डे जल से स्नान कराया और कटि-स्नान दिया । स्नान के परिणामस्वरूप रोगी की थकावट कम हो गयी, शरीर में हल्कापन आ गया और थोड़ा खरबूजा खाने की इच्छा हुई, जो दिया गया ।

१३ जून, उपचार का क्रम यथावत् चला । आज भी रोगी को इच्छा होने पर खरबूजा, छाछ और एक बार थोड़ा आम भी दिया गया । एक बात जो हम पीछे भूल गये, वह यह है कि १२ जून को रोगी ने चार लूनिया नीबू और खाये । इस प्रकार उनके पेट में कुल मिला कर बारह नीबू पहुंच गये । पूरे लूनिया नीबू का परिणाम ही रहा होगा कि बाबू जी को बहुत बड़ी संख्या में दस्त हुये, जिनमें आरम्भ में सड़ा हुआ बदबूदार मल और बाद में पीला बदबूदार तरल पदार्थ निकला ।

१४ जून, फिर बारी आई । इस दिन और दिनों की अपेक्षा और भी शीघ्र ठण्ड लगनी आरम्भ हुई, तथा ज्वर ने १०६ डिग्री को छू लिया । आरम्भ में बेचैनी बहुत रही, सिर दर्द-शुरू हुआ और बेहोशी आ गयी । इस अवस्था में रोगी का सिर ठण्डे पानी से धोया गया और सिर पर ठण्डी पट्टी लगाई गयी । ज्वर घटना शुरू हो गया और फिर उतर गया, फिर वही पूर्ण ठण्डा कटि-स्नान और खाने में आम व खरबूजा दिया गया ।

१५ जून, ज्वर नहीं हुआ, आज उसकी बारी भी नहीं थी। पचार और दिनों जैसा ही चला। धूप-स्नान भी दिया गया।

१६ जून, बारी का दिन था। सबेरे ही ज्वर के पूर्ण लक्षण प्रगट ाने लगे, स्नानादि दिये जा चुके थे। आज तापमान १०२ डिग्री से ीचे ही रहा। बेचैनी कोई खास नहीं थी, सिर भी विशेष भारी नहीं ा। ज्वर और दिनों की अपेक्षा बहुत जल्दी उतर गया। ज्वरोपरान्त नान, और आहार का क्रम यथावत् चला।

१८ जून, ज्वर नहीं हुआ और तबीयत बिल्कुल साफ रही। नानादिका क्रम पूर्ववत चलता रहा। इसके बाद एक सप्ताह तक न्न का दर्शन नहीं कराया गया। आहार में छाछ, खरबूजा, आम, उबली ई पत्ती की व दूसरी सब्जियां, भीगे हुए किशमिश, और शाम के समय क पाव दूध—ये चीजें चलती रहीं। उपचार में ठण्डे-गर्म स्नान चलते हे। इस समय उनका स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक है।

मैं पीछे कह चुकी हूं कि इस बार मेरे मनमें प्राकृतिक चिकित्सा के अनमोल पाठ पढ़ने की गहरी साध थी। श्री नेमिशरणजी (मेरे तिदेव) हमारे साथ १५ जून तक रहे। उस दिन शामकी गाड़ी से वह र्वोदय शिविर और तत्वप्रचार सभा के सिलसिले में आबू चले गये। जाने से पूर्व वह डाक्टर साहब से मिलने गए। चर्चा के दौरान उन्होंने कहा कि वह हरेक साल मलेरिया से पीड़ित होते हैं, आरम्भ में प्राकृतिक चिकित्सा का ही आश्रय लेते है मगर आखिर में कुनैन की शरण लेनी पड़ती है। उन्होंने अपनी इच्छा जाहिर की, कि इस बार मलेरिया होने पर वह भी चिकित्सा के लिये प्राकृतिक चिकित्सालय में ही चले आयेंगे

ईश्वर जैसे नेमिशरणजी के इस सद्-संकल्प की राह ही देख रहा था। २१ जून को दिल्ली एक्सप्रेस से चलकर वह दोपहर में लगभग एक बजे प्रा० चि० पहुंच गये, उनके साथ उनका मित्र मलेरिया भी था। २० जून को आबू से चलते समय बस में बैठते ही, उन्हें ठण्ड लगी और तीव्र ज्वर हो गया। आबू रोड स्टेशन पर ऐलोपैथ डाक्टर को उनके साथी निदान की खातिर बुला लाये। ज्वर नापा गया, १०४ डिग्री था। डाक्टर ने कुनैन का इंजेक्शन लेने की सलाह दी, उन्हें वह कैसे स्वीकार होती, वह तो प्राकृतिक चिकित्सालय का स्वप्न संजोए बैठे थे। आखिरकार दौरे का अगला कार्य-क्रम रद्द करके, वह यहां आ गये।

उनके आने के दिन ज्वर की बारी नहीं थी। शाम के समय स्नानादि का क्रम चला। अगले दिन से उनको भी मिट्टी की पट्टी-भाप-स्नान, पूर्ण-स्नान, कटि-स्नान और विश्राम दिया गया। उन्हें भी छिलके सहित पूरे लूनिया नीबू खिलाये गये, ज्वर की कुल चार बारियां उन्हें आईं। चौथी बारी २६ जून को आई, जिसमें ज्वर १०१ डिग्री से ऊपर नहीं गया। उच्चतम ज्वर २४ जून को हुआ, जो लगभग १०६ तक गया। उस दिन उन्हें ज्वर से पूर्व ठण्ड बहुत तेज महसूस हुई। डाक्टर साहब ने उन्हें ठीक बारह बजे की चिलचिलाती धूप में बाहर सिर ढांप कर लिटा दिया, और धूप को चारों ओर से घेरकर हवा से बचाने की पूरी व्यवस्था करदी। थोड़ी ही देर के बाद उनका शरीर गर्म हो गया और जलन महसूस होने लगी। इस पर तुरन्त उन्हें झोंपड़ी के भीतर छांह में लिटा दिया गया। ज्वर बन चुका था। इस दिन वह ज्वर के चढ़ते ही बेहोश होने लगे और कई घण्टों तक बेहोशी की

लत में ही रहे। इस हालत में वह कुछ प्रलाप भी करते रहे। वास्तव ये क्षण हमारी यानी परिचारकों की परीक्षा के थे। ऐसे समय में रज और प्रकृति-निष्ठा की सब से बड़ी जरूरत होती है।

मैं पीछे कह चुकी हूं कि नेमिशरण जी को लूनिया नीबू खिलाये ये गये थे। इससे उनके पेट की आश्चर्यजनक सफाई हुई। उनके मांगने र छाछ दी जाती, कभी-कभी थोड़ा खरबूजा भी दिया गया। २८ जून को उन्हें ठण्ड या ज्वर के कोई लक्षण नहीं आये और किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं हुआ। डाक्टर साहब की राय थी कि वह कुछ समय रुक कर पूर्ण स्वस्थ होकर ही प्राकृतिक चिकित्सालय से जायें। परन्तु नेमिशरणजी के मनमें तो क्रान्ति की ऐसी ज्वाला मैं देखती हूं कि एक क्षण भी खोना उन्हें खलता है। उनकी इस मन: स्थिति को मैं जानती हूं। इसलिये उनके स्वास्थ्य के हित में मुझे यही लगा कि उन्हें बीकानेर ले जाया जाये, जहां वह अपने कार्यक्रम के अनुसार काम भी करें और उनको सामान्य सुविधा भी रहे।

बीकानेर पहुंचने के दो दिन बाद ही उन्हें दस्त लगने शुरू हो गये। यह बात ध्यान में रखने की है कि इस समय तक उन्हें अन्न नहीं मिला था। वह केवल फल और छाछ ही ले रहे थे। दस्त चालू रहे और साथ ही साथ पेडू पर मिट्टी की पट्टी एवं ठण्डे जल का कटि-स्नान भी चलता रहा। तीन दिन में पेट पूरी तरह साफ हो गया।

एक सप्ताह बाद, उनका अन्नाहार चालू हुआ और अब वह पूर्ण स्वस्थ हैं।

(स्वस्थ-जीवन, नवम्बर १९५७ से साभार)

[७]

निमोनिया और निसर्गोपचार

—श्रीमती चन्द्रकला मित्तल, एम० ए

नवम्बर बीत रहा था, सर्दी बढ़ रही थी। चि० राहुल (हमा[illegible] पांचवीं जीवित सन्तान) जन्म से ही कब्ज का रोगी है, अब वह १० १२ दिन में एक वर्ष की आयु पूरी करने वाला था; इन दिनों उसक[illegible] अस्वस्थता और निर्बलता बहुत बढ़ गई थी। पाचन-शक्ति ने जवाब दिया था, मेरी सारी कोशिश और हमारे परम अनुग्रही डा० किशन लालजी के मृदु-उलाहनों के बाद भी चि० राहुल को मेरा दूध नहीं मि[illegible] सका था और वह गाय के दूध पर पलता रहा। राहुल के पिताज[illegible] राजस्थान सर्वोदय सम्मेलन, बारां से लौटकर जयपुर पहुँचे और वह उन्होंने श्री डा० किशनलालजी अग्रवाल से राहुल के स्वास्थ्य के बारे में चर्चा की। डाक्टर साहब की राय बनी कि बच्चेको तुरन्त प्राकृतिक चिकित्सालय (गांधीनगर, जयपुर) में ले जाया जाए। उनका आदेश पाते ही मैं जयपुर पहुँच गई और २८ नवम्बर, १९५८, से चि० राहुल की चिकित्सा आरम्भ हो गई।

चिकित्सा और रोग का उभाड़

चि० राहुल को धूप-स्नान और पांच मिनट का कटि-स्नान देना शुरू हुआ। आहार में हम उसे पहले से ही कच्चा दूध और मौसमी का रस दे रहे थे, उसे जारी रखा गया। धीरे-धीरे बच्चे में रोग के लक्षण

प्रकट होते गये। श्री किशनलालजी स्वयं प्रातर्वायु के सेवन के लिए रेत के टीबों पर जाते हैं। अपने साथ राहुल को भी उसके पिताजी के गाथ ले जाने लगे और वहां प्रातः वायु का स्नान भी दिया जाने लगा; नो कपड़ा पहनाना प्रायः बंद-सा ही रहा और बालक प्रकृति के निकट-र आने लगा।

कुछ ऐसा विचित्र संयोग हुआ कि ३० नवम्बर अर्द्धरात्रिमें प्राकृ-तिक चिकित्सालय में ही श्री भगवानदास जी केला दिवंगत हुए। अगले दिन १ दिसम्बर को श्री नेमिशरणजी (चि० राहुल के पिताजी) स्वर्गीय केलाजी की शवयात्रा आदि के काम में व्यस्त रहे। इधर उसी दिन राहुल की दोनों पसलियाँ बहुत तीव्रता से चलने लगीं। मुझे तुरन्त लगा कि उसे डब्बा (निमोनिया) हो गया है और मैंने डाक्टर साहब को इसकी सूचना दी। श्री मित्तलजी भी थोड़े चिन्तित हुए, परन्तु बोले कि दोनों फेफड़े विजातीय द्रव्यको बाहर फेंकने के लिए घोर परिश्रम कर रहे हैं, इसमें घबड़ाने की जरूरत नहीं है।

डबल निमोनिया और डाक्टर का वात्सल्य

श्री किशनलालजी अग्रवाल केवल साधारण चिकित्सक नहीं हैं, उनके हृदय की ममता और वात्सल्य रोगी को मुग्ध कर देते हैं। उन्होंने राहुल को ध्यान से देखकर कहा, "इसे मुझे दे दे, तू अपना काम कर।" मैंने देखा कि उनके हाथ दृढ़ अवश्य थे, परन्तु उनका हृदय चिन्तित था, चिन्ता उनकी आंखों में स्पष्ट थी। मैं भी राहुल को प्रकृति-माँ और उसके अनन्य सरल-साधक के हाथ में सौंपकर निश्चिन्त होने की चेष्टा करती हुई काममें लग गई।

डाक्टर साहब बच्चे को लेकर अपनी झोंपड़ी के बाहर धूप में बैठ गये और राहुल को नंगा करके उन्होंने अपनी गोद में ले लिया। थोड़ी देर धूप-स्नान दिया और चिकित्सालय के उदारमना सहायक श्री शम्भूजी को बुलाकर भाप-स्नान की तैयारी का आदेश दिया। आज श्री किशनलालजी मुझे अपने पास नहीं फटकने दे रहे थे, मानो मेरी छाया में ही उन्हें राहुल का अशुभ दिखता हो। खैर, राहुल और उसके पिताजी को लेकर वह स्नानागारमें गये और वहां उसे भाप-स्नान के बाद ठंडा-स्नान (साधारण तापक्रम के पानी में) दिया गया।

अभी भी डाक्टर साहब बच्चे को छोड़ नहीं रहे थे, मैं उत्सुक थी, बच्चे के चेहरे पर वेदना और संकट के अशुभ चिह्न झलक रहे थे। आखिर माँ की आँखों से क्या छिप सकता था। वे उसे लेकर फिर से धूप में बैठ गये और मुंह से 'हरे राम हरे राम' गाने लगे। उनके हाथ राहुल की धूप से गर्म पसलियों पर ताजे पानी की मालिश कर रहे थे। यह क्रम कोई चार घण्टे चला।

संकट-निवारण और अभयदान

लगभग छह घंटे तक डाक्टर साहब चि० राहुल को सम्हाले रहे, उसे एक-दो बार पानी पिलाया गया। छह घंटे बाद राहुल को मेरी गोदी में देते हुए उन्होंने बड़े आश्वस्त मनसे कहा कि अब इसे मौसमी का रस ही इसके मांगने पर देना। कल सवेरे फिर देखूंगा। रात में सोने देना—पानी पिलाना। मेरे बहुत कुछ पूछने पर भी उन्होंने इससे अधिक कुछ नहीं कहा।

रोगी थका हुआ सा था। ऐसा लगता था मानो मृत्यु से संघर्ष के लौटा हो; उनींदा-सा पर बेचैन रातभर पड़ा रहा। अगले दिन रे डाक्टर साहब ने स्वयं आकर उसे एनिमा दिया। उसके पेट में से की मल निकला और बच्चे ने आँखें खोल दी। भाप और कटि-न का क्रम चालू हुआ। आहार में मौसमी का रस, कच्चा दूध, शमिश का पानी और सर्वप्रथम व अन्तिम खुराक में बथुआ या लक की पत्ती का सूप दिया गया।

स्वास्थ्य का देवता झोंपड़ों में रहता है

ठीक सात दिन तक चि० राहुल को उपरोक्त परिचर्या दी जाती रही। मुझे लग रहा था कि धीरे-धीरे वह बढ़ रहा है, उसका वजन भी बढ़ रहा था। अब वह खेलने लगा और मुझे लगा कि स्वास्थ्य का देवता मुक्तवायु, खुली धरती (मिट्टी) खुले गगन और फूस की झोंपड़ी में रहता है, कृत्रिम महलों में नहीं! सात दिसम्बर की शामको श्री किशनलालजी बहुत आग्रह करके श्री नेमिशरणजी को अपने पौत्र के विवाह में सम्मिलित होने के लिये जीपकार में लेकर चौमूं को निकले। रास्ते में डाक्टर साहब ने मुक्त हँसी हंसकर कहा, "ईश्वर ने मेरी लाज रख ली: चन्द्रकला को मैं बेटी करके मानता हूँ, मुझे एक दिसम्बर को राहुल की हालत देखकर एकदम धक्का लगा था और मैं बहुत बेचैन हो गया था कि लड़की मेरे यहाँ बच्चा लेकर आई है, क्या उसे खोकर रीते हाथ लौटेगी? मुझे आशा नहीं थी कि राहुल पांच-छह घंटे से अधिक खींच सकेगा। हालांकि मैं जानता था कि यदि वह इतना समय पूरा कर लेता है तो फिर वह मौतके मुंह से बच गया, ऐसा माना जा सकता है।"

ऐसी थी राहुल की हालत। प्रकृति माँने अपने अनन्य साधक के बालक डा० किशनलालजी की प्रार्थना पर,उसका जीवन हमें लौटा दि है, अब हम उसे निसर्ग-पुत्र मानकर उसकी सेवा करते हैं। वह कच्च दूध, किशमिश का पानी, संतरे-मौसमी का रस, कभी-कभी कच्ची गाज और टमाटर तथा पालक का सूप या साग खाता है। राहुल अब पू स्वस्थ है।

एक बात जाननी लाभदायक होगी कि राहुल रात को भी दूध पीता था वरना रोता था। इस बार उसकी चिकित्सा के पश्चात् वह सबेरे सात बजेसे सायं सात बजे तक अपना पूरा आहार अर्थात् पाँच खुराक प्रति तीन घंटे के हिसाब से एक बार में डेढ़ पाव तरल पदार्थ लेता है और सायं काल सात बजेसे प्रातः सात बजे तक बारह घंटे उपवास करता है। उसे खूब नींद आती है, दिन छिपे सोता है और प्रातः उषा-काल में जाग जाता है, दिन में भी एक-दो घंटा सोता है। खूब स्वस्थ हंसता और प्रसन्न रहता है। वह दिन में हर तीन घंटे पर रोता है और जब तक वह रोता नहीं, हम उसका भोजन देते नहीं, क्योंकि श्री किशन-लालजी ने हमें यही बताया है कि बेचैन करने और रुलानेवाली भूख ही तृप्तिकी अधिकारिणी है।

(स्वस्थजीवन, मई १९५८ से साभार)

[८]

नैसर्गिक प्रसव की कथा

—श्रीमती चन्द्रकला मित्तल, एम० ए०

दिसम्बर १९५७ की बात है। पेट में अचानक तकलीफ शुरू हुई। स्वप्न में भी यह अनुमान नहीं था कि मैं गर्भवती हूं, अतः सामान्य पेट का दर्द समझकर सामान्य उपचार करती रही। दो-तीन दिन बीत जाने पर लगा कि दाई को पेट दिखा देना चाहिए। दाई ने देखकर बताया कि मेरे पेट में ६ मास का बालक पल रहा है, परन्तु पेट में गांठें हैं जिनके कारण बच्चे की गतिविधि पर पाबन्दी आगई है और बच्चे के जीवन पर संकट है यानी मैं भी संकट में थी।

आपरेशन की मांग

डाक्टरों की राय थी कि आपरेशन करना होगा, परन्तु हम धुनी ठहरे प्राकृतिक चिकित्सा के, तुरन्त डाक्टर किशनलाल जी की याद आई और बिना स्वीकृति के ही प्राकृतिक चिकित्सालय, गांधी नगर, जयपुर पहुंच गये। बाबाजी तो करुणा के भंडार ठहरे, तुरन्त सारी व्यवस्था स्वयं करदी और बोले कि मित्तल जी के भोजन का प्रबन्ध मेरे घर पर रहेगा। .... मैं झट समझ गई कि यह मेरे लिए उपवास का नोटिस है।

प्राकृतिक चिकित्सा शुरू

थोड़ी देर पश्चात् बाबाजी ने मेरी नब्ज देखी और निश्चय कर

दिया कि मैं गर्भवती हूँ। पेट देखा और निःशंक होकर बोले, 'उपवास मटकी के ठंडे पानी से मेहन स्नान, पत्ती का सूप और घूमना शुरु चिकित्सा आरम्भ होगई, उपवास के दो दिन नींबू के पानी पर ही बी गये। घूमना, एनिमा, पत्ती का सूप और मेहन स्नान चालू रहे। तबि यत बहुत हल्की लगती थी। पेडू में कुछ परिवर्तन-सा भीतर ही भीत महसूस होने लगा।

जयपुर में अनेक परिवारों से मित्रता है। लोग आये और माथ सिकोड़ने लगे। गर्भवती के लिए छठे महीने में उपवास बहुत हानि कारक रहेगा, बच्चा सूख जायगा और बहुत निर्बलता हो जायगी बाबाजी से कौन कहे ? मेरी तो हिम्मत थी नहीं। आखिर तीन दिन बीत गये। चौथे दिन बाबाजी ने मुझे संतरा लेने की इजाजत देदी। संतरा शुरू करने पर तबियत में बहुत सुधार आया, खूब फुर्ती और प्रसन्नता रहने लगी तथा पेट में दर्द बिल्कुल नहीं रहा। पेट की गांठें साफ दीखने लगीं। इन्हीं गांठों में से किसी में बच्चा भी बन्द था।

चिकित्सा लगभग २० दिन चली। गांठें घुल गईं, पेट हर रोज तेजी से बढ़ता गया और २० दिन में सात मास की गर्भवती जैसा पेट फूल गया। सब लोग अचरज में थे और मैं प्रसन्न। उपवास से विकास, मेरे लिये यह एक आनन्ददायक और ज्ञानवर्धक अनुभूति थी।

इस उपचार के पश्चात् सब ठीक चलता रहा और मैं पहले से अधिक स्वस्थ एवं प्रसन्न रहने लगी। दिन बीतते गये और होली का पुनीत पर्व आ गया। अभी पूर्णिमा में दो-चार दिन थे। मुझे पीड़ा प्रारम्भ होगई। दाई को दिखाया, उसने कहा कि सब ठीक है। ठीक

ली का दिन, फाल्गुन की पूर्णिमा : सबेरे से ही प्रसव पीड़ा शुरू हो
ई। दर्द हल्का-हल्का चला। दाई आगई थी। एक बजे दर्द बहुत तेज
। गया। असाध्य वेदना हो रही थी। मेरे मुंह से चीख निकल पड़ी।
ीख का सुनना था कि मित्तल जी झट मिट्टी की सुघड़-सी एक पट्टी
ैयार करके लाये और मेरे पेडू पर लगा कर चले गये। २० मिनट बाद
उन्होंने पट्टी बदली। मिट्टी की दूसरी पट्टी लगा कर वह कमरे से निकले
ही थे कि दाई ने मुझे बताया कि बच्चे का जन्म होगया है। सब अच-
रज में थे। न चीख-पुकार, न जच्चा को ही कोई घनी वेदना। प्रसव मेरे
लिये एक सामान्य घटना होगई।

बच्चे का जन्म सुनकर मित्तल जी कमरे में आ गये और उन्होंने बच्चे को लेकर ताजे पानी से ठीक स्नान कराया और खूब साफ करके मुझसे अलग बिस्तर पर सुला दिया। बच्चा भी रोया नहीं, सो गया। उसके बाद उन्होंने मुझे खड़ा होने को कहा, यह सुनकर मेरी पूजनीय सासजी और दाई दोनों उन्हें डांटने लगीं, परन्तु इधर मैं तो तब तक कूद कर खड़ी भी हो चुकी थी। सहारा लेने की कोई आवश्यकता नहीं अनुभव हो रही थी। पहले से रखे हुए टब के पानी में खूब स्नान किया। बड़ी दुर्गन्ध शरीर में से निकली। स्नान के पश्चात् थोड़ा साधारण (बिना उबाला) पानी पीकर मैं भी सो गई और कुल मिलाकर अगले दिन सवेरे तक हम दोनों मां-बेटे सोते ही रहे, मानों थकान उतार रहे हों।

अगले दिन एनिमा, स्नान आदि से निवृत्त होने के कुछ दे
पश्चात् मुझे संतरे का ताजा रस दिया गया और चि० मुन्ना को थोड़

शहद चटाया गया। हम दोनों सो गये। शाम को दोनों फिर नहाये सवेरे के अनुसार ही आहार लेकर फिर सो गये। यह क्रम एक सप्ताह तक चलता रहा। बच्चा मेरा दूध पीने लगा।

नामकरण संस्कार का दिन आ गया। यज्ञ-हवन-पूजा, वन्दन से निवृत्त हुए तो मैंने संतरे का रस लिया। उसे देखकर आगत स्वजनों और मेहमानों में चर्चा छिड़ गई। एक वैद्य महाशय भी थे, वे बोले—"मैं दावा करता हूँ कि यदि सारे नगर के मत लिये जायें तो एक भी मत इस पक्ष में नहीं आ सकता कि जच्चा को ठंडा पानी पिलाया जाये, ठंडे जल से फाल्गुन में स्नान दिया जाये और संतरे का रस पिलाया जाये। जच्चा को तो गर्म और शक्तिवर्द्धक बादाम, सोंठ, अजवायन, बत्तीसे का पानी आदि देना ही चाहिए अन्यथा शरीर में दर्द हो जायगा, गठिया हो जायगी।"

मैं यह सुनकर हंसती रही, मित्तल जी झुंझलाते रहे और मेरे पूजनीय सास-श्वसुर चुपचाप यह सब देखकर समझने की चेष्टा करते रहे। बड़े बच्चों को यह शिकायत थी कि इस बार उनके भाई के जन्म पर न उन्हें गोंद की मिठाई मिली थी, न बादाम का काढ़ा। वैद्यजी की भविष्यवाणी सफल हो रही थी या हमारी निष्ठा की कसौटी, पता नहीं क्या था कि मेरे पैरों में दर्द आ गया। दर्द असह्य हो गया। मेरी सासजी ने तो खूब भला-बुरा कहा और श्वसुर जी ने सिर्फ इतना ही कि—"बड़े-बूढ़े मूर्ख नहीं थे कि जच्चा को बादाम, घी, सोंठ खिलाते थे; ये लोग तो संतरे का रस और दूध मिलाकर पीते हैं।" इतने में ही संतरे का एक पिटारा जो मेरी ननद रानी ने नागपुर से भेजा था घर पर पहुंच गया और मैं उनकी खाल उधेड़ कर उन्हें चूसने लगी।

पैरों को ठंडा-गर्म सेंक दिया और धूप में पैर फैलाकर मैं बैठ गई। शाम तक दर्द निकल गया। यहां इतना कहदूं कि प्रसव के सातवें दिन से मैं घर के हरेक काम और बच्चे के टट्टी के कपड़े धोने का काम करने लगी थी। पूज्य किशनलालजी (प्राकृतिक चिकित्सक) के आदेशानुसार स्नान और आहार चला। आठ दिन केवल संतरे का रस, आगे बारह दिन गाय का कच्चा दूध और संतरे का रस मिलाकर मैं लेती रही।

इस प्रकार बीस दिन बीतने पर इस क्रम में उबली हुई हरी सब्जियां शामिल करली गईं और प्रसव के २९ वें दिन मैंने अन्नाहार चालू किया। शरीर में हल्कापन, फुर्ती, शक्ति, आंचल में दूध और मनमें उल्लास लेकर मैं प्राकृतिक चिकित्सा के रहस्यों का मनन करती रहती हूं।

(स्वस्थ जीवन, दिसम्बर १९५८ से साभार)